* ओम् *

भारतवर्ष का इतिहास

(संक्षिप्त)

प्रथम भाग

लेखक

पण्डित भगवद्दत्त बी० ए०

श्रावण १९९७ विक्रमीय] [जुलाई १९४० ईस्वी

प्रकाशक—

पण्डित भगवद्दत्त बी० ए०

वैदिक अनुसंधान संस्था

माडल टाउन

प्रथम संस्करण—सितंबर १६३६

द्वितीय संस्करण—सितंबर १६३८

तृतीय संस्करण—जुलाई १६४०

मूल्य—एक रुपया

मुद्रक

श्री देवचन्द्र विशारद

ऐच. बी. प्रेस

लाहौर

प्राक्कथन

कई वर्षों से मैं वैदिक वाङ्मय का इतिहास लिख रहा हूँ। उसके तीन भाग प्रकाशित हो चुके हैं। उसको लिखते-लिखते मैंने भारत के प्राचीन इतिहास की सामग्री भी एकत्र की। भारत के इतिहास पर जितनी भी पुस्तकें आज तक प्रकाशित हुई हैं, उनमें प्राचीन इतिहास को छोड़ ही दिया जाता है। केवल पार्जिटर और जयचन्द्र जी ने अपने बृहद् ग्रन्थों में प्राचीन इतिहास लिखने का यत्न किया है। हमारे विद्यार्थी जब संस्कृत के पुराने ग्रन्थ या उनके अनुवाद पढ़ते हैं तो वे मान्धाता, दिलीप, भरत, रघु, दुष्यन्त, शन्तनु आदि के नाम उनमें देखते हैं। पर आधुनिक इतिहास-ग्रन्थों में इन व्यक्तियों का उल्लेख ही नहीं मिलता। मैंने इस छोटे-से इतिहास-ग्रन्थ में इस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया है।

मौर्य काल से लेकर श्रीहर्ष के समय तक के इतिहास में बहुत-सी नई खोज हो चुकी है। इतिहास के पाठ्य-ग्रन्थों में उसका भी अभाव ही है। मैंने उस खोज का भी इस ग्रन्थ में उपयोग किया है। मौर्य काल से श्रीहर्ष तक भारत में साम्राज्य के पीछे साम्राज्य बने, यह इस इतिहास के पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा। आजकल की पाठ्य-पुस्तकों में इस काल के पन्ने बड़ी जल्दी से उलट जाते हैं। सम्बद्ध इतिहास की धारा उनमें टूटी सी प्रतीत होती है। इस दोष को भी दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

मुसलमानी और राजपूत इतिहास के सम्बन्ध में गौरीशङ्कर हीराचन्द जी ओझा ने एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा है। मैंने उनके ग्रन्थ से पूरा लाभ उठा कर राजपूत इतिहास उसके स्वच्छ रूप में लिखा है। अभी तक के इतिहास-ग्रन्थों में इस काल के वर्णन में भी कई निराधार बातें पाई जाती हैं।

इस प्रकार यह छोटी सी पुस्तक इतिहास के अंतिम अन्वेषणों से पूर्ण है। मैंने इतिहास की आधुनिक पाठ्य पुस्तकें भी देखी हैं और उनसे भी कहीं-कहीं सहायता ली है। आशा है कि इस पुस्तक के पाठ से विद्यार्थी पूरा लाभ उठावेंगे।

भगवद्दत्त

द्वितीय संस्करण की भूमिका

पंजाब विश्वविद्यालय के संस्कृत हिन्दी बोर्ड ने इस इतिहास को रत्न परीक्षा में रखने की कृपा की है। इसका पहला संस्करण समाप्त हो गया है। दूसरे संस्करण में कुछ नए शीर्षक देकर इस ग्रन्थ को विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी बना दिया गया है। आशा है अध्यापक और विद्यार्थीगण इस संस्करण से पूरा लाभ उठायेंगे।

२५ अगस्त १९३८ भगवद्दत्त

विषय-सूची

ओम्

भारतवर्ष का इतिहास

पहला अध्याय

भारत की स्थिति—उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व में पर्वतों से सुरक्षित; पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में विशाल समुद्रों से घिरी हुई; सजल नदियों से बहुधा सिञ्चित; वनों और खेतों से श्यामल भारत-भूमि संसार के प्रदेशों में एक महाद्वीप का-सा स्थान रखती है। प्रकृति ने इसकी सीमा इतनी स्वाभाविक और सुन्दर बना दी है जितनी कि अन्य किसी देश की दिखाई नहीं देती।

सीमा—भारत के उत्तर में गिरिराज हिमालय की लम्बी पर्वतमाला है। उसकी लम्बाई १६०० मील है। उसकी ऊँची-ऊँची चोटियाँ सदा हिमाच्छादित रहती हैं। दक्षिण में लङ्का-द्वीप और भारत-महा-सागर; पूर्व में ब्रह्मदेश और बङ्गाल की खाड़ी तथा पश्चिम में अफ़गानिस्तान, बिलोचिस्तान, और अरब सागर हैं। इन समुद्री-तटों का विस्तार लगभग ३४०० मील है।

जन-संख्या और क्षेत्रफल—भारत की जन-संख्या सन् १९३१ में ३५ करोड़ के लगभग थी। भारत का क्षेत्रफल १८,०२,६५७ वर्ग मील है।

भारत के नाम—अत्यन्त प्राचीन काल में जब कि बङ्गाल का बहुत सा भाग समुद्र रूप ही था, और सिन्ध तथा पञ्जाब के प्रदेश अभी पानी से बाहर निकले ही थे, तब आधुनिक संयुक्त प्रान्त के भाग को यहाँ के निवासी आर्यावर्त नाम से पुकारते थे। पीछे जब अनेक भूमियाँ समुद्रों से बाहर निकल आईं, और उनका आकार आधुनिक भारत के कुछ समान हुआ, तब इस देश का नाम भरतखण्ड अथवा भारतवर्ष हुआ। तत्पश्चात् अनेक आर्य लोग उत्तर और दक्षिण के समूचे प्रदेश को भी आर्यावर्त कहने लगे। मुसलमान लेखक भारतवर्ष या आर्यावर्त के स्थान में इसे हिन्दुस्तान के नाम से लिखते आए हैं।

भारत के भौगोलिक विभाग—भूगोल की दृष्टि से भारत के तीन मुख्य भाग हैं—

१—हिमालय का पार्वत्य प्रदेश। इस में काश्मीर, नेपाल, आदि देश हैं। इसकी लम्बाई कोई १६०० मील और चौड़ाई १५० से २०० मील तक है। प्राचीन काल में आर्यों के अतिरिक्त यहाँ गन्धर्व, राक्षस, और किन्नर आदि अन्य अनेक जातियाँ भी बसती रही हैं। उनके अपने अपने राज्य भी रहे हैं। यद्यपि हिमालय की दीर्घ पर्वतमाला के कारण कोई विदेशी सुगमता से यहाँ नहीं आ सकता, तथापि हिमालय में अनेक ऐसे पर्वत-द्वार या दर्रे हैं जिन के मार्ग से यहाँ के लोग बाहर जाते रहे हैं और विदेशीय लोग यहाँ आते रहे हैं।

२—उत्तर भारत का क्षेत्र। इसका आरम्भ है हिमालय के पार्वत्य स्थान के अन्त से और समाप्ति है विन्ध्य पर्वत पर। प्राचीन काल में यह क्षेत्र तीन उप-विभागों में बँटा हुआ था।

(क) पूर्व के भाग में कलिङ्ग या उड़ीसा, वङ्ग और पुराना कामरूप या आधुनिक आसाम था।

(ख) मध्य भाग में ब्रह्मावर्त आदि देश थे। इस भाग में आज के संयुक्त-प्रान्त और पञ्जाब के कुछ भाग आ जाते हैं।

(ग) तीसरा भाग था सिन्धु, सौवीर और राजपूताने का।

मुसलमानी-राज्य-काल से इसे उत्तर-भारत कहते हैं। इस में सिन्धु और गङ्गा जैसे लम्बे नद हैं। सिन्धु नद १८०० मील लम्बा है और पञ्जाब की पाँच नदियों को अपने साथ मिलाता हुआ अरब सागर में गिरता है। गङ्गा नदी बहुत पवित्र मानी जाती है। वह यमुना, गोमती, और घाघरा आदि को साथ लेकर १५०० मील के प्रदेश को सींचती हुई बङ्गाल की खाड़ी में जा मिलती है। ब्रह्मपुत्र आदि दूसरी नदियाँ भी इस प्रदेश के बहुत काम की हैं। इस क्षेत्र के मध्य भाग में प्राचीनतम काल से बड़े बड़े साम्राज्य स्थापित होते रहे हैं। अयोध्या के इक्ष्वाकुओं और हस्तिनापुर के पौरवों का ऐश्वर्य इसी भाग ने देखा है। जरासन्ध के वैभव की भूमि मगध भी इसी भाग का अंश थी। मुसलमानी राजाओं ने भी गङ्गा और यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश को ही अपना केन्द्र बनाया था। प्रतिकूल जल-वायु के कारण वे समृद्धिशील बङ्गाल में स्वयं नहीं बसे।

३—दक्षिण—विन्ध्याचल के दक्षिण में त्रिभुजाकार का एक विस्तृत पथार है। उसे अब दक्षिण भारत कहते हैं। विन्ध्य की पर्वतमाला ने इसे उत्तर भारत से सर्वथा पृथक् कर दिया है। दक्षिण के पूर्व और पश्चिम तटों पर पूर्वी और पश्चिमी घाट नाम की दो पर्वत-मालाएँ हैं।

यहाँ बड़ी बड़ी नदियाँ और बड़े बड़े मैदान नहीं हैं। भूमि भी

उतनी उपजाऊ नहीं जितनी उत्तर-भारत की है। हाँ, सोने की कानें इसी के कई स्थानों में पाई जाती हैं। समुद्र के मोती आदि भी यहीं से अन्यत्र जाते हैं। यहीं के बन्दर स्थानों से आधुनिक काल में पश्चिम के लोगों ने भारत में प्रवेश किया था। यहाँ के लोग परिश्रमी हैं। उनका एक नमूना मराठा शक्ति है, जिसने १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में उत्तर के बड़े-बड़े सम्राटों का मुकाबला किया।

भारत की जातियाँ

१. आर्य जाति—भारत में प्राचीनतम काल से निवास करती चली आई है। आधुनिक काल के अनेक योरुपीय लेखकों का कहना है कि ईसा से कोई २५०० वर्ष पहले आर्य लोग भारत में आए। परन्तु पुराने ग्रंथों से पता लगता है कि ईसा से ४००० वर्ष पूर्व से भी पहले आर्य लोग यहीं बसते थे। ये आर्य लोग सुडौल, लम्बी नाक वाले, गोरे या श्याम वर्ण के और चौड़ी छाती वाले थे। उन्हीं के वंशज आज इस भूमि पर रहते हैं। संसार की जहाँ अन्य अनेक जातियाँ इतिहास-मंच पर अपना खेल खेल कर समाप्त हो चुकी हैं, वहाँ आर्य जाति अब तक विद्यमान है। इसका संसार में एक विशेष आदर्श और उद्देश्य रहा है। आर्य लोगों को अपनी जाति का बड़ा गौरव है। वे अपने को बहुत श्रेष्ठ मानते हैं। इन की भाषा संस्कृत से बिगड़ कर अनेक रूप धारण कर चुकी है। उसके बोलने वाले १०० में से लगभग ७६ हैं। पंजाबी, हिन्दी, मारवाड़ी, गुजराती, मराठी और बङ्गला आदि भाषाएँ संस्कृत भाषा का अपभ्रंश रूप ही हैं।

२. द्राविड़ जाति—इस जाति के लोग प्रायः दक्षिण भारत में बसते हैं। इनकी सभ्यता पर्याप्त प्राचीन है। इनकी भाषा चार

प्रकार की होगई है—तामिल, तैलुगु, कनारी और मलयालम। इन भाषाओं के बोलने वाले १०० में से लगभग २१ हैं। कई लोगों का कहना है कि इन भाषाओं का मूल भी संस्कृत है। परन्तु इस विषय पर अभी बहुत खोज की आवश्यकता है।

३, ४. मुण्ड और किरात जातियाँ—मुण्ड लोग छोटा नागपुर और छत्तीसगढ़ आदि प्रदेशों में रहते हैं और किरात आसाम आदि में। इनकी दशा बड़ी असभ्य है। ये १०० में से केवल ३ ही हैं।

जातियों का सम्मिश्रण

बहुत पुराने काल से यहाँ जातियों का सम्मिश्रण होता रहा है। यूनानी यात्री मैगस्थनीज़ ने भी इस सम्मिश्रण का उल्लेख किया है। परन्तु अनेक ब्राह्मण और क्षत्रिय अपनी पवित्रता को स्थिर रखते आये हैं। और क्योंकि आर्यों की ही यहाँ अधिकांश संख्या रही है, अतः आर्य-संस्कृति ने अपना पूरा प्रभाव बनाए रखा है।

दूसरा अध्याय

भारत में आर्यों का इतिहास कब से आरम्भ होता है

पचास वर्ष पहले के इतिहास-लेखक, जो प्रायः विदेशीय लोग ही थे, समझते थे कि भारत में आर्यों का इतिहास ईसा से कोई २५०० वर्ष पूर्व से आरम्भ होता है। उससे पूर्व यहाँ असभ्य लोग ही वास करते थे। आर्यों ने उन्हें जीत कर अपनी बस्तियाँ यहाँ बनाईं। परन्तु गत बारह वर्षों में कुछ ऐसी खोज हुई है कि जिससे यह विचार सर्वथा उड़ गया है।

हड़प्पा और मोहेञ्जोदारो की खुदाइयाँ—पञ्जाब के

मिण्टगुमरी जिले में हड़प्पा नाम का एक स्थान है। इसी प्रकार सिन्ध के लाड़काना ज़िला में मोहेञ्जोदारो नाम का एक और स्थान है। इन दोनों स्थानों में किन्हीं पुरातन नगरों के भग्नावशेष थे। उनकी खुदाई आरम्भ हुए अभी बारह वर्ष से अधिक नहीं हुए। इनके अन्दर से कई बड़े महत्त्व के पदार्थ मिले हैं। सारे विद्वानों का मत है कि ये नगर आज से कोई पाँच या साढ़े पाँच हज़ार वर्ष पुराने होंगे। इन नगरों की सड़कें, मकान, नालियाँ, कुएँ और अन्य बातें ऐसी हैं कि जिनसे निश्चित होता है कि इनमें रहने वाले लोग बहुत सभ्य थे। इस प्रकार इतना तो सब विद्वान् मानने लग पड़े हैं कि उत्तरीय पञ्जाब और सिन्ध में आज से पाँच हज़ार वर्ष पहले भी सभ्यता का बहुत विकास था। हाँ, कई लेखक तो ऐसा कहते हैं कि यह सभ्यता आर्यों से पूर्व की कोई सभ्यता थी। हमारे महाभारत आदि ग्रन्थों से पता लगता है कि यह सभ्यता सर्वथा आर्य सभ्यता ही थी। अभी पञ्जाब यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर लक्ष्मण स्वरूप जी ने बड़े प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि हड़प्पा और मोहेञ्जोदारो की सभ्यता वैदिक आर्यों की ही सभ्यता थी।

जिस देश की सभ्यता इतनी पुरानी है और जिस सभ्यता का इतिहास पदे पदे शिक्षाप्रद घटनाओं से पूर्ण है, उसके इतिहास का यथार्थ अध्ययन न केवल देश में रहने वालों के लिए, प्रत्युत संसार भर के लिए बड़ा आवश्यक है।

भारतीय इतिहास के स्रोत

भारतीय इतिहास के पुरातन ग्रन्थ—आर्य लोग बहुत प्राचीन काल से अपने इतिहास-ग्रन्थ लिखते आए हैं। अनेक

आर्य राजा अपने सरस्वती भाण्डारों में अपने अपने काल का इतिहास निर्माण कराकर सुरक्षित करते रहे हैं। घरेलू और दूसरे युद्धों के कारण इस इतिहास-सामग्री का अधिकांश भाग नष्ट होगया है। इसलिए जब मुसलमान इस देश में आए और उन्होंने यहाँ के इतिहास-ग्रन्थ खोजे, तो उन्हें ऐसे ग्रन्थ कम ही मिले। अतएव उन्होंने अनायास लिख दिया कि आर्य लोगों को इतिहास-कला से प्रेम नहीं था। परन्तु जैसे जैसे अब खोज बढ़ती जाती है, इतिहास के अनेक पुराने ग्रन्थों का पता लगता जाता है। पुराने इतिहास के प्रसिद्ध ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१. **रामायण**—यद्यपि रामायण से पहले भी इतिहास के अनेक ग्रन्थ रहे होंगे, परन्तु वे अब मिलते नहीं। रामायण का रचयिता आदि-कवि वाल्मीकि था। उसने राम से पूर्व के अयोध्या के अनेक प्रतापी राजाओं का उल्लेख किया है।

२. **महाभारत**—महाभारत में तो पुराने इतिहासों अथवा ऐतिहासिक श्रुतियों का बहुत ही उल्लेख है। इसकी रचना का श्रेय सर्व-शास्त्र-निष्णात कृष्ण द्वैपायन भगवान् व्यास को है। अतीत और अपने काल का इतना सजीव इतिहास संसार भर का कोई दूसरा विद्वान् आजतक नहीं लिख सका।

३. **पुराण**—ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य और भविष्य आदि पुराणों में प्राचीन और महाभारतोत्तरकालीन इतिहास का बड़ा सुन्दर वर्णन है। महाभारत युद्ध से कोई पचास वर्ष पहले योरुप के कई असुरों का आर्यों से जो महान् संग्राम हुआ था, और जिसमें श्रीकृष्ण ने बड़ा भारी भाग लिया था, उसका उल्लेख भी पुराणों में ही है।

४. **नीलमत पुराण और राजतरंगिणी**—काश्मीर-सम्बन्धी

पुरातन इतिहास के ये दो ग्रन्थ-रत्न अब मुद्रित हो चुके हैं। इन में पुराने इतिहास की बड़ी उपयुक्त सामग्री है।

५. **आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प**—यह एक बौद्ध ग्रन्थ है और इस में एक सहस्र श्लोक केवल शुद्ध इतिहास-परक हैं। महात्मा बुद्ध के काल से लेकर ईसा की नवम शताब्दी तक का प्रामाणिक इतिहास इस ग्रन्थ में मिल गया है।

६. **बाणकृत हर्षचरित**—यह इतिहास का एक बहुमूल्य ग्रंथ है।

इसी प्रकार के अनेक इतिहास आसाम, राजस्थान आदि स्थानों से मिल रहे हैं।

शिलालेख और सिक्के—इन ग्रन्थों के अतिरिक्त पुराने शिलालेख और सिक्के भारत तथा विदेशों में एकत्र किये गए है, और अब भी एकत्र हो रहे हैं। लाहौर के अद्भुतालय में ऐसे सिक्कों की एक बड़ी राशि है। इन से भी इतिहास पर बड़ा प्रकाश पड़ा है।

पुराने संस्कृत ग्रन्थों के पढ़ने से पता लगता है कि महाभारत से भी बहुत पूर्वकाल के राजा अपने शिलालेख स्थापित कराया करते थे। वे शिलालेख अभी मिले नहीं, पर प्रतीत होता है कि चिरकाल होजाने से जब उन के अक्षर मिट से गए, तो उन्हीं शिलाओं पर नए राजाओं ने अपनी आज्ञाएँ खुदवा दीं। इस कारण बहुत पुराने लेख अभी तक नहीं मिल सके।

विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृत्तान्त

१. **यूनानी यात्री**—चिरकाल से ही अनेक विदेशी यात्री भारत में आते रहे है। वर्तमान समय में उन यात्रियों के जो यात्रा-लेख मिले हैं, उनमें सब से पुराने लेख यूनानी यात्रियों के ही हैं। उनमें से मैगस्थनीज़ का लेख बड़े महत्व का है।

२. चीनी यात्री—इन में से तीन बहुत प्रसिद्ध हैं, अर्थात् फाह्यान, युवन च्वङ्ग या ह्यूनसांग और इत्सिंग।

३. मुसलमान यात्री—सबसे पुराने मुसलमान यात्री सुलेमान सौदागर का ग्रन्थ अब हिन्दी में भी मिलता है। उसके पश्चात् इबूरिहाँ अलबेरूनी का बृहत् ग्रन्थ इतिहास का एक रत्न है।

४. ईसाई यात्री—इनमें मनोची और बरनियर आदि के नाम स्मरणीय हैं।

आर्यों का निवास स्थान—जिस मूल आर्य जाति का अङ्ग भारत के आर्य हैं उसी जाति का अङ्ग योरुप के आधुनिक अङ्गरेज़, फ्रैञ्च और जर्मन आदि लोग हैं। कई विद्वानों का कहना है कि वह मूल आर्य जाति कभी मध्य एशिया में वास करती थी। परन्तु दूसरे विद्वानों की यह धारणा है कि इस विषय में निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि भारत में आर्य लोग अत्यन्त प्राचीन काल से ही चले आए हैं। परलोकगत भारतीय विद्वान् बाल गङ्गाधर तिलक का मत है कि आर्य जाति का मूल स्थान उत्तर ध्रुव था; वहीं से वह संसार के अन्य स्थानों में फैली।

तीसरा अध्याय

वैदिक काल

चार वेद—वेद आर्यों का प्राण रहे हैं। आर्य लेखकों का कहना है कि आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, अर्थ-शास्त्र, नाट्यशास्त्र दर्शन शास्त्र और दूसरे सब ही वैज्ञानिक विषय प्रायः वेदों से निकले हैं। वेद से पुराना और कोई ग्रन्थ संसार में विद्यमान नहीं

है। भारतीय लोग वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते रहे हैं और अपने सारे कर्म इन्हीं के आधार पर करते रहे हैं। ये वेद चार हैं। नाम हैं इनके ऋक्, यजु, साम और अथर्व। योरुपीय लोगों का कहना है कि पुराने ऋषियों ने वेदों की रचना की, और इनमें पुराने राजाओं और ऋषियों का वर्णन भी मिलता है।

वेदों का काल—वेदों के काल के विषय में बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ की गई हैं। कई योरुपीय लेखक इन्हें ईसा से १२०० वर्ष पहले का मानते हैं, तो दूसरे २००० वर्ष पहले का। यकोबी सदृश जर्मन विद्वान् तो इन्हें ईसा से ४००० वर्ष पूर्व का मानते हैं। महाराष्ट्र विद्वान् बाल गङ्गाधर तिलक का मत है कि वेद ईसा से कोई ६००० वर्ष पूर्व बने थे। ये विचार कैसे ही हों, पर इतना तो निश्चित है कि महाभारत युद्ध से कोई सौ वर्ष पहले कृष्ण द्वैपायन व्यास ने इन्हीं वेदों को अपने अनेक शिष्यों को पढ़ाया था। और व्यास जी ने अपने पूर्वजों से यही वेद पढ़े थे। आर्य लोग मानते आए हैं कि सृष्टि के आरम्भ में और युग युग के आरम्भ में ऋषियों के हृदय में वेद स्वयं उद्भासित हो जाते हैं। इनका निर्माता कोई मनुष्य-विशेष नहीं है।

वैदिक साहित्य

(क) शाखाएँ—वेदों की कभी ११३१ शाखाएँ थीं। उनमें से अब कोई चालीस ही मिलती हैं।

(ख) ब्राह्मण ग्रन्थ—ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के सब से प्राचीन व्याख्यान हैं। इन में यज्ञों के साथ साथ अनेक विद्याओं का विधान है। याज्ञवल्क्य का शतपथ ब्राह्मण अब भी बहुत प्रसिद्ध है।

(ग) आरण्यक और उपनिषद्—आत्मा क्या है, हम क्यों

जन्मते हैं, मृत्यु के पश्चात् प्राणियों की कैसी कैसी गति होती है; यही बातें उपनिषदों के मुख्य विषय हैं। औरङ्गजेब का भाई दाराशिकोह, जर्मन विद्वान् शौपनहार और अन्य बड़े बड़े पण्डित इन उपनिषदों की शिक्षा पर मुग्ध रहे हैं।

(घ) **सूत्रग्रन्थ**—इन में यज्ञों का बड़ा विस्तृत वर्णन मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के साथ ये पद्धति का काम देते हैं। इनका एक भाग गृह्यसूत्र हैं। आज भी आर्य लोगों के गृहस्थ के सब संस्कार इन्हीं गृह्यसूत्रों के आधार पर होते हैं।

(ङ) **उपवेद**—आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थवेद, और गन्धर्ववेद। इन में से आयुर्वेद के द्वारा ही रोग निवारण की विद्या भारत में फैली है। अर्थवेद मानो राजनीति का स्रोत है।

(च) **वेदांग**—ये गिनती में छः हैं; शिक्षा, कल्प, निरुक्त व्याकरण, ज्योतिष, छन्द। वेद के अध्ययन में इनसे बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

वैदिक आर्य—वैदिक आर्य दीर्घजीवी, सुगठित शरीर वाले नीरोग, परम सत्यवक्ता, ऋषियों और वेद का परम आदर करने वाले तथा विद्यावान् थे। उनकी स्त्रियाँ भी प्रायः विदुषी होती थीं। स्त्रियों का बड़ा आदर था। वैदिक आर्य बड़ी आयु में विवाह करते थे। उनके घर धन-धान्य से पूर्ण थे। ब्राह्मण त्यागी, आचारवान् और विद्याभ्यासी थे। क्षत्रिय बलवान् और मृत्यु के लिए सदा तय्यार रहते थे। रणक्षेत्र से भागने का कभी नाम न लेते थे। वैश्य व्यापार में चतुर और समृद्धि के पुंज थे। शूद्रों की संख्या अति न्यून थी। सब वर्ण एक दूसरे के सहायक थे। लोग इतने सुखी थे कि चोर दस्यु का नाम भी न था। हाँ, कभी कभी दुर्भिक्ष

से उन्हें पीड़ा अवश्य होती थी। सोने का सिक्का भी बहुत राज्यों में चलता था।

वर्ण, आश्रम धर्म—आर्य संस्कृति का मूलाधार वर्णाश्रम धर्म था। सारा आर्य-मानव-समाज चार वर्णों में बाँटा गया था। वे चार वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण का काम वेद तथा दूसरी विद्याओं का पढ़ना और पढ़ाना था। यही ब्राह्मण आर्यों के समस्त यज्ञ और संस्कार कराया करते थे। राजाओं के पुरोहित और मन्त्री यही लोग होते थे। क्योंकि इन्हें धन का लालच नहीं होता था, अतः इनके नेतृत्व में राज्यकार्य अत्यन्त सफलता से होता था। क्षत्रिय का काम विद्या का पढ़ना और विशेष कर अर्थ-शास्त्र, नीति-शास्त्र और धनुर्वेद का पढ़ना था। देश-रक्षा और राजकीय कामों का भार क्षत्रियों पर ही था। कभी कभी क्षत्रिय राजा विद्या दान देने का भी गौरव प्राप्त करते थे। महाराज अश्वपति से अनेक ब्राह्मणों ने अध्यात्म-विद्या ग्रहण की थी। वैश्य लोग विद्या ग्रहण करते थे और विविध व्यवसायों द्वारा देश के धन को बढ़ाते थे। शूद्र का काम धर्म-पूर्वक अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना था। वर्ण प्रायः जन्म से होते थे, हाँ कभी कभी बहुत तपस्या आदि करने से छोटे वर्ण वाला उच्च वर्ण में चला जाता था।

आश्रम भी चार थे। उनके नाम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचारी और संन्यासी का परम मान था। ब्रह्मचर्य आश्रम पर आर्य लोग बहुत बल देते थे। इसे वे अपनी सारी उन्नति का आधार समझते थे। ब्रह्मचारी बड़े सरल, तपस्वी, शृङ्गार-रहित, गुरु-सेवी, और विद्याभ्यासी होते थे। गृहस्थ धर्मानुकूल आचरण करते थे। गृहस्थ के पश्चात् वैराग्यवान् लोग आत्म-

चिन्तन करने के लिए वानप्रस्थ और संन्यासी बनते थे। संन्यासी बन कर वे उपदेश भी देते थे। जीवन के इन चार भागों के लिए पृथक्-पृथक् लगभग पच्चीस पच्चीस वर्ष का समय नियत था।

शासन—वैदिक काल में समूचा भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। प्रजा को राज्य में बहुत अधिकार प्राप्त थे। सब विशेष समयों पर सभा-विशेषों में प्रजा की सम्मति ली जाती थी। बड़े बड़े विद्वान् आकर उन सभाओं में व्याख्यान देते थे। इन सभाओं में बोलने के लिए वक्ता होना एक बड़ा गुण माना जाता था। इस लिए राजा लोग भी इस गुण के लिए अभ्यास करते थे। राघव राम और यादव कृष्ण में वक्तृता-शक्ति अलौकिक थी। प्रजा को अप्रसन्न करके कोई राजा राज्य नहीं कर सकता था।

वैदिक धर्म—आर्य लोग वेदों के धर्म को मानते थे। वेदों का धर्म उच्च, सरल और बड़ा पवित्र है। एक ईश्वर की पूजा सर्वत्र पाई जाती है। हाँ, कई लोग देवता के रूप में भी ईश्वर की पूजा करते थे। वे अपने मृतकों को जलाते थे। उनका पुनर्जन्म में विश्वास था। दान उनके धर्म का एक प्रधान अङ्ग था। पाँच महायज्ञों पर बड़ा बल दिया जाता था। बालक गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते थे। ऋषियों और ब्राह्मणों का बड़ा मान था।

आर्थिक और सामाजिक दशा—ब्राह्मण को धन की आवश्यकता न थी, पर आवश्यकता पड़ने पर राजा और धनवान लोग उसके सब काम पूरे कर देते थे। क्षत्रिय और राजा लोग धन-धान्य से पूर्ण होते थे। अनेक राजाओं ने अपने यज्ञों में अगणित सोना दान किया। वैश्य लोग स्वदेश और परदेश में

वाणिज्य करके धन को बढ़ाते रहते थे। किसानों की उपज के छठे भाग पर राजा का अधिकार होता था। शूद्रों को उनकी आवश्यकता के अनुसार धन मिल जाता था। इस प्रकार सब वर्ण आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते थे।

चोरी का अभाव था। स्त्रियों का स्थान यद्यपि घर में था, पर था बड़ा ऊँचा। प्रायः नर और नारियाँ आभूषण पहनते थे। उनके वस्त्र बड़े सुन्दर होते थे। आर्यों के घर बड़े स्वच्छ और शोभायुक्त होते थे। उन में धूप का जाना आवश्यक समझा जाता था। राज-प्रासादों का सौन्दर्य तो असाधारण था। आर्य-विद्या के रक्षक पुरोहितों का बड़ा मान था। आर्यों का जीवन था बड़ा सरल आजकल के समान कुटिलता, कलह और धनाभाव में भी ऐश्वर्य भोगने की इच्छा उन में कदापि न थी। पूर्ण ऐश्वर्य में रहते हुए भी उन में त्याग-भाव अधिक था। तभी तो अनेक राजा लोग यज्ञों के अंत में बहुधा अपना सारा धन बाँट दिया करते थे।

चौथा अध्याय

"राजनीतिक इतिहास का आरम्भ

विवस्वान का पुत्र मनु—मनु प्रथम आर्य राजा था। अयोध्या नगरी उसी की आज्ञा से बनी थी। वही सब धर्मशास्त्र का प्रथम निर्माता था। मनु के वंश से अनेक राज-कुलों की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं राजकुलों ने भारत के विभिन्न भागों में अपने अपने राज्य स्थापित किए। अयोध्या का प्रसिद्ध इक्ष्वाकु-वंश मनु के

ही उत्तराधिकारियों में से था। इक्ष्वाकुवंश का प्राचीन इतिहास अब भी बहुत मिलता है।

इक्ष्वाकु—महाराज इक्ष्वाकु ने कोसल देश में अपना राज्य स्थापित किया। सुदृढ़ नगरी अयोध्या को उसने अपनी राजधानी बनाया। वह एक प्रतापी राजा था। भारतीय इतिहास में इक्ष्वाकु का कुल ही सूर्यवंश के नाम से प्रसिद्ध है।

मान्धाता—इक्ष्वाकु के कुल में उसके २१ पीढ़ी पश्चात् मान्धाता नाम का एक दिग्विजयी राजा हुआ। उसने अंगार, मरुत्त, बृहद्रथ आदि अनेक राजाओं को परास्त किया। पुराने ग्रन्थों में कहा है कि—"जहाँ से सूर्य उदय होता है और जहाँ जाकर अस्त होता है, वह सारा देश युवनाश्व के पुत्र मान्धाता के राज्य में है।"

हरिश्चन्द्र—इसी प्रतापी और सत्यनिष्ठ राजा की अनेक कहानियाँ अब तक प्रसिद्ध चली आती हैं।

सगर—हरिश्चन्द्र के कुछ पीढ़ी पश्चात् अयोध्या की राजगद्दी पर सगर नामक राजा हुआ। उसकी गिनती भी चक्रवर्ती अर्थात् दिग्विजयी राजाओं में है। इसका बड़ा पुत्र असमंजस था। प्रजा पर अत्याचार करने के कारण वह राज्य का अधिकारी न बन सका। फिर उसके पुत्र अंशुमान को राजसिंहासन मिला।

भगीरथ, दिलीप और रघु—महाराज भगीरथ ही गंगा नदी को इस ओर लाए थे। पहले वह नदी उत्तर के पर्वतों में बहती थी। इसी कारण गंगा का नाम भागीरथी है। दिलीप भी बड़े समर्थ और प्रतापी राजा थे। रघु की दिग्विजय तो बहुत प्रसिद्ध है। अफ़गानिस्तान के दूरवर्ती प्रदेशों को रघु ने अपने बाहुबल से जीता

था। मान्धाता और रघु की विजय में दक्षिण के कई भाग सम्मिलित हैं। रघु के प्रचण्ड प्रताप के कारण ही सूर्य-वंश फिर रघुकुल कहलाया।

दाशरथी राम—रघु के पश्चात् सूर्यवंश में एक अत्यन्त तेजस्वी राजा हुए। उनका इतिहास इतना पवित्र, निर्मल और अनुकरणीय है कि कवि-शिरोमणि वाल्मीकि ने उनके जीवन पर एक समूचा इतिहास ही लिख दिया। उस इतिहास का नाम रामायण है। रामायण में श्री राम के शुद्ध चरित्र का गान किया गया है। श्री राम और रामायण का हिन्दुओं में आज भी अत्यन्त आदर है।

राम का इतिहास—दिलीप और रघु के कुछ काल पश्चात् कोसल के अधिपति महाराज दशरथ थे। उनकी तीन रानियाँ थीं, कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा। इनके चार पुत्र थे। कौसल्या के राम, कैकेयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न। भारत में विश्वामित्र नाम के अनेक ऋषि हो चुके हैं। महाराज दशरथ के काल में भी एक विश्वामित्र थे। वे एक यज्ञ करते थे। अनार्य राक्षस उनके यज्ञ का नाश कर देते थे। विश्वामित्र जी ने दशरथ से उनके पुत्र राम और लक्ष्मण माँगे ताकि वे उनके यज्ञ की रक्षा करें। अनिच्छा होते हुए भी महाराज ने ऋषि का वचन शिरोधार्य किया। राम और लक्ष्मण के कारण विश्वामित्र का यज्ञ सफल हो गया। विश्वामित्र स्वयं एक क्षत्रिय-कुल से थे। वे युद्ध-विद्या-विशारद और परम अस्त्रवेत्ता थे। यज्ञ की समाप्ति पर उन्होंने राम और लक्ष्मण को अनेक अस्त्र दिए।

उन्हीं दिनों मिथिला के राजा सीरध्वज जनक की परम रूपवती कन्या सीता का स्वयंवर था। विश्वामित्र जी राम और लक्ष्मण

को लेकर जनकपुरी में पहुँचे । सीरध्वज की प्रतिज्ञा थी कि जो कोई उसके पास रखे हुए शिव-धनुष को तोड़ेगा, वही सीता का पति होगा। स्वयंवर स्थल में अनेक क्षत्रिय राजा उपस्थित थे। वे सब हार गए। धनुष तो उनसे उठा भी नहीं। विश्वामित्र जी की आज्ञा से राम ने वह अद्वितीय धनुष क्षण भर में तोड़ दिया। सीता जी ने जयमाला उनके गले में पहना दी। तत्पश्चात् श्री राम और सीता जी का विधिवत् विवाह हो गया।

महाराज दशरथ वृद्ध हो चुके थे। वे राम को अपना युवराज बनाना चाहते थे। कैकेयी को पुराने देवासुर संग्राम में उन्होंने कभी दो वर दिए थे। अब कैकेयी ने उनके पूर्ण करने की प्रार्थना की। एक वर के उपलक्ष्य में उसने राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास माँगा और दूसरे में भरत के लिए उतने काल का राज्य। वृद्ध राजा हतबुद्धि हो गया। एक ओर पुत्र का वियोग था, दूसरी ओर वचन। पर था वह शब्द का धनी। उसने अपना वचन नहीं हारा।

पिता के वचन को पूरा करने के लिए राम वन को चल पड़े। लक्ष्मण और सीता ने भी उनका अनुकरण किया। सीता एक आदर्श नारी थी। उसने अपना धर्म निबाहा और लक्ष्मण ने भी भ्रातृभाव का एक उज्ज्वल प्रमाण दिया। राजा दशरथ पुत्र-वियोग को सहन न कर सके और उनका देहावसान हो गया। भरत इस समय अपने मामा के घर थे। वे अयोध्या लौटे तो सब कुछ देख सुन कर सन्न हो गए। अपने मन्त्रियों और कुल-पुरोहित वसिष्ठजी के साथ वे राम को लौटा लाने के लिए वन को गए। पर राम कहाँ मानने वाले थे। उन्होंने समझा बुझा कर भरत को लौटा दिया।

अयोध्या से चल कर राम चित्रकूट पहुँचे। मार्ग में वे अनेक ऋषियों का सत्संग करते जाते थे। उन्हीं की सम्मति से उन्हों ने दण्डकारण्य में अपनी कुटिया बना ली। जब वहाँ रहते रहते उन्हें चिरकाल हो गया, तो एक दिन राम तथा लक्ष्मण की अनुपस्थिति में लङ्का का राक्षस राजा रावण सीता जी को बल-पूर्वक उठाकर ले गया।

सीता जी की खोज में राम और लक्ष्मण किष्किंधा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुग्रीव, अङ्गद और विद्वान् तथा बली हनुमान को अपना साथी बनाया। सुग्रीव की वानर-सेना के साथ राम ने लङ्का पर आक्रमण किया। राक्षसों ने भयङ्कर युद्ध किया, पर अन्त में वे पराजित हुए। रावण युद्ध में मारा गया। चौदह वर्ष अब समाप्त हो चुके थे। सीता सहित राम अयोध्या को लौटे।

राम के पुत्र—राम के दो पुत्र थे, लव और कुश। इसी प्रकार लक्ष्मण आदि के भी पुत्र थे। उन सब ने अपने अपने नए राज्य बनाए। राम के अनेक पीढ़ी पश्चात् महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। उस युद्ध के समय अयोध्या की राजगद्दी पर उसी कुल का बृहद्बल नाम का एक राजा था, जो युद्ध में मारा गया। ”

पौरव-कुल

पुरुरवा—मनु से पुरुरवा नामक एक राजा का सम्बन्ध है, वह ब्रह्मवादी था।

नहुष, ययाति और पुरु—उस पुरुरवा के कुल में नहुष और उसका पुत्र ययाति दो प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं। पुरु इसी ययाति के पाँच पुत्रों में से एक था। उसके नाम से भारतीय

इतिहास में पौरव नाम का एक वंश चला। पहले यह वंश इतना प्रसिद्ध नहीं था, पर धीरे-धीरे इसकी प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई।

दुःषन्त—पुरु के कुल में ही महाराज दुःषन्त जिन्हें कई लोग दुष्यन्त भी कहते हैं, बड़े प्रसिद्ध राजा हुए। उनकी एक धर्मपत्नी सुविख्याता शकुन्तला थी। इसी शकुन्तला से उनका एक पुत्ररत्न हुआ।

भरत—शकुन्तला के पुत्र का नाम था भरत। यह वीर बालक जब छः ही वर्ष का था, तभी वन के सिंह आदि हिंसक जन्तुओं को पकड़ लेता था। भरत एक चक्रवर्ती राजा हुआ है। उसने अनेक देश विजय किए थे। उसे सम्राट् और सार्वभौम राजा भी कहते हैं। उसने बड़े-बड़े यज्ञ किए। उसकी दक्षिणा का अन्त न था। कई विद्वानों का मत है कि इसी भरत के नाम से इस देश का नाम भरत-खण्ड या भारत हुआ। पौरव कुल को ही भारत-कुल कहते हैं। गीता आदि ग्रन्थों में अर्जुन आदि को इसी कुल में उत्पन्न होने के कारण 'भारत' कहा गया है। प्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत के नाम का कारण भी यही है कि वह भारत कुल का इतिहास है।

हस्तिन—भरत के कई पीढ़ी पश्चात् पौरव-कुल में एक राजा हस्तिन हुआ। उसने हस्तिनापुर का प्रसिद्ध नगर बनवाया। तब से हस्तिनापुर ही पौरव लोगों की राजधानी बन गई।

कुरु—इस वंश में कुरु नाम का भी एक राजा हो चुका है। उसी के कारण इस पौरव वंश को कौरव वंश भी कहते हैं।

शन्तनु—कुरु के कुछ पीढ़ी पश्चात् प्रतीप नाम का एक बड़ा धार्मिक राजा हुआ। उसके तीन पुत्र थे, देवापि, बाह्लीक और शन्तनु। देवापि तो त्वचा-रोग के कारण वन को चला गया; उस ने राज्य नहीं लिया। बाह्लीक ने अपने मामा के कुल के साथ

सम्बन्ध जोड़ लिया। अब रहा सब से छोटा शन्तनु। उसने राज्य सँभाला। गङ्गा नाम की एक स्त्री से उस का एक पुत्र देवव्रत था। यही देवव्रत पीछे भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शन्तनु की एक स्त्री थी दाशराज की कन्या सत्यवती। सत्यवती से उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए, चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। राजा शन्तनु कोई चालीस वर्ष राज करके काल-धर्म को प्राप्त हुआ।

चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य—चित्राङ्गद छोटी अवस्था में ही युद्ध में मारा गया। विचित्रवीर्य क्षयरोग से स्वर्ग सिधारा। इन दोनों के थे दो पुत्र—धृतराष्ट्र और पाण्डु।

धृतराष्ट्र और पाण्डु—धृतराष्ट्र नेत्रहीन था, अतः पाण्डु ने सब राज-कार्य सँभाला। पाण्डु अस्त्रविद्या में बड़ा प्रवीण था। अपने पिता के शीघ्र मर जाने से राज्य के कई भाग जो अन्य राजाओं ने ले लिए थे, वे सब पाण्डु ने लौटा लिए। पाण्डु की ख्याति दूर दूर तक फैल गई। कुछ ही काल पश्चात् पाण्डु हिमालय के वन-प्रदेश को चला गया। वहाँ उसके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए आयुक्रमानुसार उन के नाम—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव थे। दूसरी ओर धृतराष्ट्र के भी अनेक पुत्र हुए। उनमें से दुर्योधन और दुःशासन बड़े और पराक्रमी थे। पाण्डु जंगल में मर गया। ऋषि लोग उसके पुत्रों को उनकी माता कुन्ती सहित हस्तिनापुर में छोड़ गए। कहते हैं युधिष्ठिर उस समय १६ वर्ष का, भीम १५ का, अर्जुन १४ का और नकुल और सहदेव तेरह तेरह वर्ष के थे। दुर्योधन युधिष्ठिर से कुछ मास छोटा था। आरम्भ से ही दुर्योधन और पांडवों में कलह रहने लग पड़ी।

भगवान् कृष्ण—उन्हीं दिनों मथुरा के समीप व्रज की भूमि में एक और कुमार गोप बालकों में पल रहा था। उसका नाम

था कृष्ण। बाल्यकाल में ही उसने अश्रुतपूर्व काम किए थे। कुछ बड़े होकर श्रीकृष्ण ने कंस का वध किया। श्रीकृष्ण और उनके ज्येष्ठ भ्राता बलराम जी ने सांदीपिनी नाम के आचार्य से वेद और अस्त्रविद्या सीखी। श्रीकृष्ण यादव कुल के थे। उस समय यदुवंशी लोग बड़े कष्ट में थे। श्रीकृष्ण ने उनका संघ स्थापित किया और आप राजा न बन कर वे उसके नायक ही रहे। जरासन्ध उन दिनों मगध का प्रतापी राजा था। उस ने अनेक क्षत्रिय राजा बन्दी बनाए हुए थे। वह यादवों का भी शत्रु था। उसी के आक्रमणों से बचने के लिए श्रीकृष्ण ने यादवों को समुद्र-तट-वर्ती द्वारिका पुरी में बसा दिया। इस प्रदेश का पुराना नाम आनर्त था।

दुर्योधन हस्तिनापुर में पिता के साथ राजकाज देखने लगा और युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ नगर का राजा हुआ और उसने अपना ऐश्वर्य खूब बढ़ाया। इसे देख कर दुर्योधन और उसके भाई जलते थे। इन्हीं दिनों अर्जुन और कृष्ण की अटूट मैत्री हो चुकी थी। श्रीकृष्ण की गम्भीर नीति के बल से पाण्डव जरासन्ध को मार चुके थे। युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ बहुत सफल हुआ। उसके आरम्भ में श्रीकृष्ण ने स्वयं शिशुपाल को भी मार दिया। दुर्योधन पाण्डवों का ऐश्वर्य सह न सका। गान्धार के राजा अपने मामा शकुनि के कहने से दुर्योधन ने युधिष्ठिर को द्यूत के लिए निमन्त्रण दिया। उस जुए में युधिष्ठिर राजपाट हार गया। अब प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्ष के वनवास और तेरहवें वर्ष के अज्ञात-वास के लिए पांडव वन की ओर चले।

महाभारत का विख्यात युद्ध

तेरह वर्ष समाप्त हो गए। पाण्डवों ने दुर्योधन से अपना राज्य

माँगा। पर वह तो सूई की नोक के बराबर भाग भी देना न चाहता था। श्रीकृष्ण भी भाई-भाई में सन्धि कराने में असफल रहे। आर्यावर्त के सब क्षत्रिय राजाओं से दुर्योधन और पाण्डवों ने सहायता मांगी, और वे सब भी किसी न किसी ओर से इस युद्ध में लड़े। दुर्योधन दल की कौरव सेना हस्तिनापुर से कुरुक्षेत्र तक फैल गई। पाण्डव सेना विराट प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र में एकत्र हुई। आर्यावर्त के इतिहास में यह युद्ध अपना आप ही दृष्टान्त है। कुरुक्षेत्र की भूमि पर यह युद्ध अठारह दिन तक होता रहा। श्रीकृष्ण की नीति और अर्जुन की वीरता ने थोड़ी सेना वाले पाण्डवों को विजय प्राप्त कराई। इसी युद्ध के प्रथम दिन भगवान् कृष्ण ने मोह-प्राप्त अर्जुन को गीता का जीवन-भरा उपदेश दिया था।

युद्ध के पश्चात्—इस घोर संग्राम के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने एक अश्वमेध यज्ञ किया और वह ३६ वर्ष तक हस्तिनापुर में राज्य करता रहा।

भारत-युद्ध का काल

इतिहास-लेखक स्मिथ इस युद्ध के होने में ही सन्देह करता है, परन्तु पार्जिटर इस युद्ध को एक ऐतिहासिक घटना मानता है। इस प्रसिद्ध विद्वान् के लेखानुसार भारत-युद्ध ईसा से कोई १००० वर्ष पूर्व हुआ था।

पटना के इतिहासज्ञ श्री काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार यह युद्ध ईसा से कोई १४५० वर्ष पहले हुआ था। प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर (पाँचवीं शताब्दी ईसा) के अनुसार भारत-युद्ध का काल ईसा से कोई २४०० वर्ष पूर्व का है। अन्य आर्य-परम्परा

में भारत-युद्ध को ईसा से कोई ३१०० वर्ष पहले माना जाता है। अधिक संभावना यही है कि यह युद्ध ईसा से लगभग ३१०० वर्ष पहले ही हुआ होगा।

भारत-युद्ध तक आर्यों में कभी कोई वंश प्रधान हो जाता था और कभी कोई। हमने दो प्रधान वंशों का ही उल्लेख किया है। इस महाभारत युद्ध ने अनेक क्षात्र-वंशों का समूल उच्छेद कर दिया। आर्यों की अस्त्रविद्या क्षीण हो गई। बड़े बड़े राजर्षि इस युद्ध में मारे गए। इस युद्ध के छत्तीस वर्ष पश्चात् श्रीकृष्ण ने योगावस्था में अपने प्राण त्याग दिए और उनकी मृत्यु के पीछे ही यादव-कुल का भी ध्वंस हो गया।

आर्य राजा दीर्घजीवी थे—भारत-कालीन और उससे पहले के पुराने राजाओं में बहुधा युद्ध होते रहते थे। जो राजा उन युद्धों में नहीं मरते थे, और अपनी स्वाभाविक मृत्यु से प्राण त्यागते थे, उनमें से अधिकांश राजा दीर्घजीवी होते थे। भारत-युद्ध के समय भीष्म कोई १५० वर्ष के थे, और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन आदि कोई ७० वर्ष के थे। अतः कई एक राजाओं का राज्य-काल लंबा होता था।

पाँचवाँ अध्याय

भारत-युद्ध के पश्चात्

परीक्षित् दूसरा—भारत संग्राम के तेरहवें दिन अर्जुन का वीर पुत्र अभिमन्यु युद्ध में वीर-गति को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी धर्मपत्नी उत्तरा ने परिक्षित् को जन्म दिया।

३६ वर्ष के राज्य के अनन्तर युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित जब वन को प्रस्थान करने लगे तो अपने स्थान पर उन्होंने परीक्षित् का अभिषेक किया। परीक्षित की आयु ६० वर्ष की हुई।

जनमेजय तीसरा—परिक्षित् का पुत्र जनमेजय था। इसी ने नाग-राजाओं के बढ़ते हुए वैभव का विध्वंस किया था। यह नाग या सर्प जाति योरुप तक फैली हुई थी। जनमेजय तक्षशिला में भी रहा करता था।

जनमेजय के पाँचवें उत्तराधिकारी महाराज निचक्नु के समय में गङ्गा में एक भारी बाढ़ आई। हस्तिनापुर उस बाढ़ में बह गया। तब उस राजा ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया।

उदयन—उसके बहुत काल पश्चात् कौशाम्बी में उदयन राज करता था। इस उदयन की बड़ी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। संस्कृत के अनेक नाटक इसी की कथाओं पर बने हैं। पुराने कवियों ने इस राजा का नाम चिरस्थायी कर दिया है। उन दिनों अवन्ति (उज्जयन) में चण्ड महासेन का राज्य था। वह एक शक्तिशाली राजा था। उसकी कन्या वासवदत्ता के साथ उदयन का विवाह हुआ।

मागध राज्य

पूर्व लिखा जा चुका है कि भारत-युद्ध काल से कुछ पहले मगध पर जरासन्ध का राज्य था। उसका पुत्र सहदेव भारत-युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़ता हुआ मारा गया। भारत-युद्ध से पहले मगध राज्य की बड़ी प्रधानता थी। युद्ध के कुछ काल पश्चात् मगध ने फिर वही प्रधानता प्राप्त कर ली। इस राजवंश में बड़े बड़े प्रभावशाली राजा हो चुके हैं। भारत का अगला इतिहास चिरकाल तक मगध के इतिहास से ही अधिकांश में सम्बन्ध रखता है।



भगवान बुद्ध की गुप्तकालीन प्रतिमा

छठा अध्याय

भगवान् पार्श्वनाथ, शाक्य-मुनि बुद्ध तथा तीर्थंकर महावीर का प्रादुर्भाव

वैदिक धर्म का ह्रास—वही वैदिक धर्म जो कभी बड़ा उदार था, अब संकीर्ण होने लगा। कर्मकाण्ड और शुष्क तर्क ने आर्य-मनों पर अपना गहरा प्रभाव उत्पन्न कर लिया। धर्म की एकता नष्ट हो चली। यज्ञों में पशुवध अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया। उन दिन सैकड़ों छोटे छोटे विचारक अपना सम्प्रदाय खड़ा करने की चिन्ता में थे। ऐसे काल में कई सुधारकों की बड़ी आवश्यकता थी।

भगवान् पार्श्वनाथ—ईसा से कोई ७५० वर्ष पहले ऐसे ही एक महापुरुष का जन्म हुआ। उनका नाम था श्री पार्श्वनाथ। वे तपस्वी, वीतराग और ज्ञानवान् व्यक्ति थे। उन्होंने अहिंसा धर्म की पताका खड़ी की। उन का सारा जीवन लोगों को सरलता, अहिंसा और त्याग सिखाने में ही बीता। धीरे धीरे उनके बहुत से अनुयायी हो गए। वे जैन धर्म के तीर्थंकरों में से थे। उनसे पहले भी जैन-धर्म के कई तीर्थंकर हो चुके थे।

शाक्यमुनि बुद्ध—ईसा से कोई छः सौ वर्ष पहले नेपाल की तलहटी में शाक्य जाति के क्षत्रियों का शासन था। उनकी राजधानी कपिलवस्तु नाम से प्रसिद्ध थी। उस समय वहाँ का राजा शुद्धोदन था। गौतम बुद्ध इसी महाराज शुद्धोदन का भाग्य-शाली पुत्र था। बुद्ध का बाल्यकाल का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ का लालन-पालन बड़े ऐश्वर्य में हुआ। युवा अवस्था में उसका विवाह भी हो गया तथा उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम था राहुल।

सिद्धार्थ बड़ा विचारवान् था । वह संसार की घटनाओं को बड़े ध्यान से देखता था। एक बार मार्ग में जाते हुए उस ने सहसा एक अरथी देखी। लोग किसी मृतक के शव को श्मशान की ओर ले जा रहे थे। सिद्धार्थ के चित्त पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। उसके मन में विचार उठा कि एक दिन मुझे भी मरना होगा। आत्मा जाग पड़ी, ज्ञान-चक्षु खुल गये, हृदय में एक और ही तरंग उत्पन्न हुई। संसार के ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्रादि अपना आकर्षण खोने लगे। एक रात सोई हुई स्त्री की ओर अन्तिम दृष्टि डाल कर राजकुमार सिद्धार्थ ने घर त्याग दिया। गृह-त्याग के समय उसकी आयु कोई ३० वर्ष की थी।

घर से निकल कर राजकुमार ने दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया। इस अध्ययन से उसे शान्ति न मिली। छः वर्ष अत्यन्त कठिन तप तथा उपवास किये, परन्तु मनोरथ सिद्ध न हुआ। अन्त को गया में एक वृक्ष के नीचे समाधि लगाई। इसी समाधि के अंत में उसे प्रकाश मिला। उसको आत्मतत्त्व का बोध हुआ। अब वह वस्तुतः बुद्ध बन गया।

जिस पीपल वृक्ष के नीचे बुद्ध ने समाधि लगाई थी, बौद्ध उसे बोधि-वृक्ष कहते हैं और उसका बड़ा मान करते हैं। दूर दूर से बौद्ध लोग अब भी गया के उस स्थान की यात्रा के लिए आते हैं। बुद्ध अपनी शिक्षाओं को आर्य-मार्गीय कहते थे। उन्होंने अपना शेष जीवन इन्हीं शिक्षाओं के प्रचार में लगाया।

काशी के पास सारनाथ नाम का एक स्थान है। वहाँ पर बौद्धों के पुराने मन्दिरों के भग्नावशेष अब भी दिखाई देते हैं। वहीं से भगवान् बुद्ध ने अपने बौद्ध धर्म या आर्य-मार्ग का प्रचार आरम्भ किया। वह स्थान भी बौद्धों का एक तीर्थ बन गया है। धर्म-

प्रचारार्थ महात्मा बुद्ध का पर्यटन काशी से बहुत दूर के प्रदेशों में नहीं हुआ। वे मगध और उसके समीपस्थ राज्यों में ही घूमा करते थे। उनके सहस्रों शिष्य बन गए। जो अधिक वैराग्यवान् हुए वे भिक्षु बन गए। अनेक राजाओं और धनी श्रेष्ठियों ने इन भिक्षुओं के लिए बड़े-बड़े आश्रम स्थापित कर दिए। बुद्ध ने ४५ वर्ष तक अपने धर्म का प्रचार किया। थोड़े से विद्वान् ब्राह्मण भी उनके अनुयायी हो गए थे।

बुद्ध का उपदेश—बुद्ध परलोक की बातों का उपदेश न करते थे। उनके सामने निर्वाण-प्राप्ति ही जीवन का एक मुख्य आदर्श था। यह निर्वाण सत्य, दया और आत्मशुद्धि से प्राप्त हो सकता है। अतः इन्हीं बातों पर वे अधिक बल दिया करते थे। भगवान् बुद्ध से यदि कोई दार्शनिक प्रश्न करता भी था, तो वे उस का उत्तर नहीं देते थे। इसीलिए बौद्धधर्म के प्रारम्भिक काल में जटिल दार्शनिक विचारों का अभाव ही था। लगभग ८१ वर्ष की आयु में बुद्ध ने यह नश्वर शरीर त्यागा। उन की मृत्यु ईसा से कोई ५०० वर्ष पूर्व हुई थी।

संघ—अपने भिक्षुओं को बुद्ध ने बौद्ध धर्म के प्रचार का आदेश दिया। इसी निमित्त उन्होंने बौद्ध संघ का निर्माण किया। भिक्षुओं को विशेष कठिन नियमों का पालन करना पड़ता था। पहले तो यह संघ बड़े उच्च आदर्श वाला था, और इसके द्वारा बौद्ध धर्म का अच्छा विस्तार हुआ; पर धीरे-धीरे इस संघ में अनेक बुरी बातें आ गईं। उन्हीं के कारण आर्यावर्त की भूमि से अन्त में बौद्ध धर्म उठ ही गया।

पूज्य तीर्थंकर महावीर स्वामी—आर्यावर्त के इतिहास में बहुत प्राचीन काल से वैशाली (पटना के उत्तर में वर्तमान बसार) का एक क्षत्रिय-राज्य रहा है। ईसा से कोई ५५० वर्ष पूर्व यहाँ

लिच्छवि जाति का राज्य था। उनके यहाँ उन दिनों एक राजकुमार था। उसका नाम था वर्धमान। कुमार वर्धमान की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध हुआ। युवावस्था में उसका विवाह भी हो गया। पर सांसारिक बन्धनों में उसका चित्त नहीं लगता था। लगभग ३० वर्ष की आयु में उसने मोह में डालने वाले सांसारिक बन्धन तोड़ दिए। इस त्याग के अनन्तर उसने घोर तपस्या का आरम्भ किया। पुराने आर्य ऋषियों को छोड़ कर इतनी तपस्या और किसी ने न की होगी। जैनों में तपस्या वैसे भी धर्म का एक प्रधान अङ्ग है। भगवान् महावीर ने १३ वर्ष की तपस्या के पश्चात् ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब वे यह प्राप्त ज्ञान औरों को देने लगे। वे स्थान स्थान में घूम कर अपने धर्म का उपदेश देते थे। उनका मार्ग जैन-धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महावीर स्वामी लगभग ७२ वर्ष की आयु तक इस मानव कलेवर को धारण किए रहे।

जैन धर्म के सिद्धान्त—जैन धर्म में अहिंसा पर बड़ा बल दिया गया है। धर्म के इस सूक्ष्म तत्त्व को जितना जैनों ने समझा है, उतना अन्य किसी ने नहीं पहचाना। वैदिक धर्म में हिंसा बहुत बढ़ गई थी। जैन तीर्थंकरों ने उसका नाश करके पुनः मानवता का प्रचार किया। आत्म-शुद्धि, त्याग और तपश्चर्या में भी जैनों की असीम श्रद्धा है। सत्य उनके धर्म का मुख्य अंग है। आत्मा को जैन लोग अमर मानते हैं। उस आत्मा की भिन्न भिन्न गतियाँ हैं। उन्नति करती करती वह मोक्ष को प्राप्त कर लेती है। जैन मुनियों का जीवन बहुत ऊँचा और अनुकरणीय था। पहले जैनों में भी गम्भीर दार्शनिक विचार के ग्रन्थ नहीं बने, पर उत्तर काल के जैन दार्शनिक ग्रन्थ संसार के साहित्य में बड़ा प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं।

बौद्ध और जैन—बौद्ध और जैनों के कई सिद्धांत परस्पर मिलते हैं। उन के कई सिद्धान्त वैदिक सिद्धान्तों के ही किंचित् परिवर्तित रूप हैं। पर कई सिद्धान्तों में उनका परस्पर मतभेद है। भगवान् बुद्ध का कथन है कि उन्होंने किसी नए मार्ग का प्रचार नहीं किया। उन से पहले भी अनेक बुद्ध हो चुके थे। इसी प्रकार स्वनाम-धन्य महावीर स्वामी जी भी यही कहते थे कि उन्होंने किसी नवीन मार्ग का प्रकाश नहीं किया। उन से पूर्व २३ तीर्थंकर और हो चुके थे। उन्हीं श्री पार्श्वनाथ आदि पूर्व तीर्थंकरों के मत का उन्होंने प्रचार किया है।

सातवाँ अध्याय

बुद्ध-काल के भारतीय राज्य

कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यास की कृपा से महाभारत काल का स्पष्ट और प्रामाणिक इतिहास मिलता ही है। उस के पश्चात् का आर्य इतिहास अभी तक पूरा स्पष्ट नहीं हो सका। परन्तु बुद्ध के काल से इतिहास फिर स्पष्ट होने लगता है। बौद्ध ग्रन्थों में बुद्ध के काल के अनेक राजाओं और १६ महा-जनपदों (रियासतों) का उल्लेख है। उन में से अधिक शक्तिशाली राजा निम्न-लिखित हैं—

१—प्रसेनजित् कोसल का अधिपति।

२—बिम्बिसार मगध का अधीश्वर।

३—उदयन कौशाम्बी का राजा।

४—लिच्छिवि संघ के अनेक सामन्त।

५—चण्ड प्रद्योत महासेन उज्जयिनी का शासक।

६—शुद्धोदन कपिलवस्तु का नृप।

१—प्रसेनजित्

उन दिनों के कोसल में वर्तमान अवध, गोरखपुर और बनारस का कुछ भाग सम्मिलित था। इस की राजधानी थी श्रावस्ती। कोसल का राजा प्रसेनजित बड़ा बलशाली था। इसकी बहन का विवाह मगध के राजा बिम्बिसार से हुआ था। बिम्बिसार की मृत्यु के पश्चात् उसके एक पुत्र और उत्तराधिकारी अजातशत्रु ने प्रसेनजित से युद्ध किया। युद्ध की समाप्ति पर प्रसेनजित ने अपनी कन्या का विवाह अजातशत्रु से कर दिया। प्रतीत होता है कि प्रसेनजित से चार पीढ़ी पश्चात् कोसल राज्य मगध राज्य के अन्तर्गत हो गया।

२—बिम्बिसार

बुद्ध के काल से कुछ पूर्व शैशुनाग वंश का मगध पर अधिकार हो चुका था। इस वंश का पाँचवाँ राजा बिम्बिसार था। वह बुद्ध के काल में जीवित था। उसकी बुद्ध में बड़ी श्रद्धा हो गई। बौद्ध धर्म के प्रचार में बिम्बिसार और उसके पुत्र अजातशत्रु ने बड़ी सहायता की। बिम्बिसार ने मगध राज्य का बड़ा विस्तार किया।

जीवक वैद्य—इसी बिम्बिसार की राजधानी राजगृह में बौद्ध काल का सर्वश्रेष्ठ वैद्य जीवक रहता था। जीवक की चिकित्सा के फल आज भी बड़े बड़े धुरन्धर चिकित्सकों को आश्चर्य-चकित कर देते हैं। भारत के बड़े-बड़े राजा अपनी चिकित्सा के लिए राजगृह के महाराज से जीवक को माँगा करते थे।

३—उदयन

यह वत्स देश के अन्तर्गत कौशाम्बी नाम की अपनी राजधानी में रहता था। इसका उल्लेख पहले भी हो चुका है। इसके पिता का नाम शतानीक था। यह दूसरा शतानीक था। साक्षात् कौरव-वंशी

होने से बुद्ध-काल के क्षत्रियों में इसका वंश सब से श्रेष्ठ समझा जाता था।

४—लिच्छवि वंश

इस वंश ने एक प्रजातंत्र राज्य स्थापित किया हुआ था। इन की राजधानी वैशाली थी। आज कल विहार प्रान्त का जो मुज़फ्फरपुर ज़िला है, उसी में यह प्रसिद्ध नगर था। इस जाति में बड़े बड़े योद्धा हुए हैं। बुद्ध काल से कई सौ वर्ष पीछे प्रसिद्ध गुप्त वंश की स्थापना में इस जाति का भी बड़ा हाथ था।

५—चण्ड प्रद्योत

भारतवर्ष में उज्जयिनी नामक एक बड़ा पुराना नगर है। अत्यन्त प्राचीन काल से वहाँ कई महान् राज्य रहे हैं। बुद्ध के काल में वहाँ के राजा का नाम चण्ड, अथवा महासेन अथवा प्रद्योत था। उज्जयिनी नगर की शोभा इतिहास में विख्यात रही है।

६—शुद्धोदन

यह बुद्ध का पिता और कपिलवस्तु में रहने वाला था। इसका वंश शाक्य-वंश कहाता था। इस का राज्य भी एक प्रकार का प्रजातन्त्र राज्य ही था।

आठवाँ अध्याय

मगध का नन्द वंश

भारत का पहला सम्राट् महापद्म नन्द

शैशुनाग वंश के पश्चात् मगध पर नन्द-वंश का अधिकार हुआ। इस वंश का आदि पुरुष महानन्द था। यह छोटी जाति

का था। इस के उदय के साथ विशुद्ध क्षत्रियों का ह्रास ही होता गया। नन्द वंश ने मूल राजा को धोखे से मारकर अपना राज्य स्थापित किया था।

महापद्म सब क्षत्रिय-वंशों का अन्तकृत

इस कुल का राजा महापद्म नन्द बड़ा प्रसिद्ध हुआ। उसने परशुराम के समान क्षत्रियों का नाश किया। सिकन्दर के आक्रमण के समय यही मगध में राज्य करता था। यूनानी ऐतिहासिकों के अनुसार इसकी शक्तिशाली सेना में २ लाख पैदल, २० सहस्र अश्वारोही, २ सहस्र रथ और ३ सहस्र हाथी थे। कई अत्याचारों के कारण इस की प्रजा इससे प्रसन्न न थी।

सिकन्दर का पंजाब पर आक्रमण

ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व यूनान की एक छोटी सी मैसीडन नामक रियासत के राजा सिकन्दर ने पंजाब पर आक्रमण किया। सिकन्दर एक महान् योद्धा था। उसने तीन ही वर्ष में योरुप और एशिया के कई भाग जीत लिए। फिर वह भारत की ओर बढ़ा। ईसा पूर्व सन् ३२६ में उस ने ओहिन्द के स्थान पर सिन्धु नद को पार किया। तक्षशिला के राजा आम्भी को कई प्रकार के प्रलोभन देकर उसने अपनी ओर मिला लिया। परन्तु उन्हीं दिनों सिन्धु और जेहलम नदी के बीच एक छोटा सा प्रदेश था। वहाँ पोरस नाम का एक राजा राज्य करता था। इसका सारा राज्य आधुनिक पञ्जाब के दो ज़िलों से अधिक न था। इतने छोटे प्रदेश का राजा था बड़ा सहासी और वीर। उस में अभी पुराने क्षत्रियों का रक्त विद्यमान था। बहुत यत्न किए जाने पर भी उस ने सिकन्दर से सन्धि न की। युद्ध प्रारंभ हुआ। वह युद्ध बड़ा भयङ्कर था।

पर विजय सिकन्दर की हुई। रणक्षेत्र में घायल राजा पोरस से सिकन्दर ने पूछा—"तुम्हारे साथ क्या व्यवहार किया जाय ?" वीर क्षत्रिय ने उत्तर दिया—"जैसा राजा राजाओं से करते हैं।" इस उत्तर से सिकन्दर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पोरस से मित्रता कर ली।

पोरस पर विजय सिकन्दर को महँगी पड़ी। उस की सेना ने सोचा कि भारत का इतना छोटा राजा जब ऐसा योद्धा है, तो सम्राट् महापद्म नन्द कैसा होगा। सिकन्दर आगे बढ़ा। वह व्यास नदी तक आ गया। परन्तु उस की सेना भयभीत हो चुकी थी। महापद्म नन्द की बलवती सेना से सामना करने का उस में साहस नहीं था। सिकन्दर ने भारत में पदे-पदे वीर क्षत्रियों को देखा। योरुप और एशिया के अन्य भागों में उसने ऐसी बात नहीं देखी थी। वीर क्षत्रिय ही नहीं, कठ जाति के लोग भी बड़े योद्धा थे। पंजाब में ऐसे ही छोटे-छोटे अनेक गण-राज्य या प्रजातन्त्र राज्य तब स्थापित थे। उन छोटे-छोटे राज्यों को इतना बलशाली देखकर सिकन्दर को अपनी सेना की बात माननी पड़ी। सिकन्दर लौट गया।

सिकन्दर का लौटना—लौटते समय व्यास से जेहलम तक तो सिकन्दर को कोई कठिनाई नहीं पड़ी। जेहलम पहुँचकर उसने एक बड़ा दरबार लगाया। इस दरबार में उसने कई राजनीतिक बातों की घोषणा की। व्यास से जेहलम तक के प्रदेश का उसने पोरस को अपना प्रतिनिधि राजा बना दिया। जेहलम से सिन्ध तक का प्रतिनिधि उसने आम्भी को बनाया। सिन्धु से हिन्दुकुश पर्वत तक का प्रदेश उसने अपने एक सेनापति फिलिप्स को सौंपा। सिकन्दर की इच्छा हुई कि वह जेहलम के जल-मार्ग से लौटे। उसने दो सहस्र नौका और जहाज़ जेहलम में एकत्र किए। सेना का कुछ भाग इनमें गया और शेष भाग तट पर चल रहा था।

सिकन्दर का विचार था कि वह शांति-पूर्वक लौट जायगा। परन्तु शिवि, क्षुद्रक और मालव जाति के वीरों ने उसका मार्ग कण्टकाकीर्ण कर दिया। सिकन्दर को लौटते हुए भी युद्ध पर युद्ध करने पड़े। कई बार तो उसे अपने जीवन की भी चिन्ता हो जाती थी। सिकन्दर को साहस नहीं हुआ कि इन जातियों को पूर्णतया नष्ट कर दे। वह तो अब यहाँ से निकल जाना चाहता था। अन्त को उसकी नौकाएँ और जहाज़ समुद्रतट पर पहुँच गये। वहाँ से वह समुद्री मार्ग द्वारा अपनी एशिया की राजधानी सूसा की ओर चला गया। ईसा से ३२३ वर्ष पूर्व वैबिलोन नगर में सिकन्दर की मृत्यु हो गई। तब उसकी आयु ३३ वर्ष की ही थी।

सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव—पंजाब के थोड़े से प्रान्त में सिकन्दर ने जो अपना राज्य स्थापित किया था, उसकी मृत्यु के पश्चात् वह नष्ट हो गया। उसके सेनापति परस्पर लड़ने लग पड़े। ऐसा देख कर पंजाब के राजा फिर स्वतन्त्र हो गए। हाँ पंजाब के गण-राज्यों को कुछ आघात पहुँचा और उनके स्थान पर अधिक बड़े राज्य स्थापित होने लग पड़े।

पाश्चात्य लोगों का कहना है कि सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारत के शासन, राजनीति, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सभी पर यूनान का प्रभाव पड़ने लगा। इस बात में कोई अधिक सार नहीं है। सिकन्दर पंजाब के ही थोड़े से भाग में रहा। यूनानी प्रभुत्व भी अल्पकाल के लिए उस थोड़े से भाग पर ही था। उसका प्रभाव सारे भारत पर नहीं पड़ा। भारत में ज्ञान, विज्ञान की उन्नति इस आक्रमण के बहुत पूर्व से हो रही थी। भारतीय लोग अपनी पुरानी प्रथाओं के न त्यागने में सुप्रसिद्ध रहे हैं, अतः उन पर यूनान का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

नौवाँ अध्याय

मौर्य-साम्राज्य

(लगभग ई० पू० ३२५ से ई० पू० १८८ तक)

जिस समय सिकन्दर पंजाब के पश्चिम में डेरा डाले पड़ा था, उस समय मगध में नन्द-वंश का राज्य था। इसी नन्द के भय से सिकन्दर की सेना ने व्यास नदी के पार जाने से इनकार कर दिया था। उन दिनों तक्षशिला विद्या का एक बड़ा भारी केन्द्र स्थान था। दूर-देशों के विद्यार्थी यहाँ विद्या ग्रहण करने आते थे। कहते हैं चन्द्रगुप्त नाम का एक रणवीर भी उन दिनों तक्षशिला के समीप विचरता था।

चंद्रगुप्त—चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक जीवन के विषय में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की जाती हैं। कई विद्वान् कहते हैं कि महापद्म नन्द की मुरा नाम की एक दासी थी। चन्द्रगुप्त उसी मुरा और महापद्म नन्द का पुत्र था। दूसरे विद्वानों का कथन है कि चन्द्रगुप्त मौर्य नामक किसी क्षत्रिय-कुल का राजकुमार था। वह निर्भय, साहसी और विकट कार्य करने में समर्थ था। राजगृह में उन दिनों एक बड़ा प्रचण्ड ब्राह्मण रहता था। वह परम विद्वान्, कूट-नीतिज्ञ और दृढ़ सङ्कल्प का व्यक्ति था। नाम था उसका चाणक्य। नन्द ने एक बार उसकी अवहेलना की। ब्राह्मण की क्रोधाग्नि जल उठी। वह बदला लेने के विचार में सन्नद्ध हो गया। कुमार चन्द्रगुप्त को उसने अपने काम का पाया। दोनों ने मिलकर और अनेक छोटे-छोटे राज्यों को अपने साथ मिलाकर नन्द को पराजित कर दिया। ईसा से लगभग ३२५ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मगध के राज-सिंहासन पर बैठा।

चन्द्रगुप्त का राज्य—ईसा से ३२३ वर्ष पूर्व सिकन्दर की मृत्यु हो गई। उसके सेनापति परस्पर लड़ रहे थे। पंजाब का अधिकांश प्रदेश चन्द्रगुप्त ने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। हिमालय के पार्वत्य राज्य भी चंद्रगुप्त ने जीत लिए थे। बङ्गाल की खाड़ी तक चंद्रगुप्त की विजय-पताका फहराती थी। इस प्रकार हिमालय से विन्ध्य और बङ्गाल से हिन्दुकुश तक का प्रदेश चन्द्रगुप्त की अधीनता में था।

महामन्त्री चाणक्य—जिस चाणक्य का अभी कथन किया गया है, उसका दूसरा नाम कौटल्य* अथवा आचार्य विष्णुगुप्त था। चन्द्रगुप्त के महामंत्री पद को यही नीतिज्ञ विष्णुगुप्त चिर-काल तक अलंकृत करता रहा। इसे राजनीति का अवतार कहें तो अनुचित न होगा। यह बड़ा दीर्घजीवी था। आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प नामक बौद्ध ग्रन्थ में लिखा है कि वह तीन पीढ़ियों तक अर्थात् चंद्रगुप्त, बिंदुसार और अशोक तक इसी पद पर आरूढ़ रहा। उसका न्याय नियम अटूट था। आर्य, बौद्ध, जैन सभी का वह हितू था। भगवान् कृष्ण के पश्चात् राजनीति का वही एक अपार पंडित हुआ है।

कौटल्य का अर्थशास्त्र—कौटल्य का अर्थशास्त्र संस्कृत वाङ्मय में एक बड़े महत्त्व का ग्रंथ है। महाभारत और उससे भी पहले कालों में बड़े-बड़े आचार्यों ने अर्थशास्त्र के ग्रंथ रचे थे। उनमें से बृहस्पति, उशना, भीष्म, द्रोण, उद्धव और नारद आदि के ग्रंथ बृहत्काय थे। आचार्य कौटल्य ने उन सब का सार रूप यह ग्रंथ लिखा। इसके पढ़ने से कौटल्य के सूक्ष्म और व्यापक

---

* साधारणतया अब तक यह नाम 'कौटिल्य' लिखा जाता है, पर कुटल गोत्र होने के कारण 'कौटल्य' नाम ही ठीक है।

पाण्डित्य का परिचय मिलता है। कौटल्य के अर्थशास्त्र में राज्यों के शासन और सेना-सञ्चालन आदि का ही वर्णन नहीं, प्रत्युत धर्मशास्त्र के सारे जटिल विषयों का भी उल्लेख है। उसमें हीरे, सोने और चाँदी के प्रकार और उन के प्राप्ति-स्थानों का भी कथन है। यह अर्थशास्त्र भारतीय इतिहास का एक अनुपम सहायक ग्रन्थ है।

सैल्यूकस का आक्रमण—सिकन्दर का देहान्त यौवन-काल में ही हो गया। उसके एशिया के साम्राज्य को हथियाने के लिए उस के दो सेनापतियों में संग्राम आरम्भ हुआ। एक सेनापति था सैल्यूकस और उसके प्रतिद्वन्द्वी सेनापति का नाम था एण्टीगोनस। दोनों नौ वर्ष तक युद्ध में लगे रहे। अन्त को सैल्यूकस विजयी हुआ। ईसा से ३१२ वर्ष पूर्व बैबिलोन में सैल्यूकस का विशेष सजधज से राज्याभिषेक हुआ। सब छोटे बड़े सामन्तों ने सैल्यूकस को समस्त पश्चिमी एशिया का अधीश्वर मान लिया। सैल्यूकस का हृदय इस विजय से बहुत बढ़ गया। उसने विचार किया कि जो काम सिकन्दर नहीं कर सका, वह उसे करना चाहिए, अर्थात् पंजाब के खोए हुए भागों को ही केवल उसे प्राप्त न करना चाहिए, प्रत्युत भारत के अन्य भाग भी उसे जीतने चाहिएँ। ३०५ ई० पू० में उसने अपनी चुनी हुई सेनाओं का मुख भारत की ओर मोड़ा। चन्द्रगुप्त और चाणक्य भी तैयार थे। भारतीय सेना गङ्गा के पार पहुँच गई। तुमुल युद्ध हुआ। यूनानी परास्त हुए। सैल्यूकस को सन्धि करनी पड़ी। महामन्त्री चाणक्य ने बड़ी दूरदर्शिता से संधि की निम्नलिखित शर्तें उपस्थित कीं—

१—काबुल, गान्धार, हिरात और बलोचिस्तान के प्रदेश सैल्यूकस चन्द्रगुप्त को देवे।

२—५०० हाथी चन्द्रगुप्त सैल्यूकस की भेंट करे।

३—सैल्यूकस अपनी कन्या का विवाह चन्द्रगुप्त से करे। तीसरी शर्त का कई विद्वान् खण्डन करते हैं। उनका मत है कि चन्द्रगुप्त की रानियों में इस यूनानी कन्या का नाम नहीं है।

सन्धि का प्रभाव—जब बलोचिस्तान अफ़ग़ानिस्तान आदि के दूरवर्ती प्रदेश भारतीय साम्राज्य में मिल गए, तो भारतीय साम्राज्य की सीमा बहुत दूर तक फैल गई। चन्द्रगुप्त को अपनी कई छावनियाँ वहाँ बनानी पड़ी होंगी। भारत पर हिन्दुकुश के मार्ग से विदेशी आक्रमण-कारी बार बार जो आक्रमण करते थे, वे सब बन्द हो गए। भारतीय साम्राज्य का सिक्का पश्चिम में दूर दूर तक बैठ गया। पश्चिमोत्तर सीमा के सम्बन्ध में भारत में जो परिस्थिति आधुनिक ब्रिटिश राज्य नहीं बना सका, वह चन्द्रगुप्त ने बना ली थी। चन्द्रगुप्त के व्यापक प्रभाव के कारण ही पश्चिम के कई सम्राटों ने अपने अपने राजदूत चन्द्रगुप्त की सभा में नियुक्त किए। उन में से सैल्यूकस का राजदूत मैगस्थनीज़ बहुत प्रसिद्ध है। इस प्रकार भारत और पश्चिम का गहरा राजनीतिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया।

मैगस्थनीज़ का भारत-वृत्तान्त—मैगस्थनीज़ का मूल ग्रन्थ नष्ट हो चुका है। सायनी, सोलिन और अरायन नाम के तीन यूनानी ग्रन्थकारों ने मैगस्थनीज़ के उस नष्ट यात्रा-वृत्तान्त के बहुत से उद्धरण अपने ग्रंथों में दिए हुए हैं। उन्हें एक जर्मन विद्वान् ने एकत्र कर दिया है। उन उद्धरणों से तत्कालीन भारत की अनेक बातों का पता चलता है। पाटलिपुत्र नगर, चन्द्रगुप्त की सेना, उसके शासन तथा व्यक्तिगत जीवन आदि का अच्छा

वर्णन मिलता है। मैगस्थनीज़ का कहना है कि यहाँ के राजा उसके काल से कोई ६००० वर्ष पूर्व तक का अपना राजनीतिक वृत्तान्त जानते थे। वह फिर लिखता है—

"भारत अनगिनत और विभिन्न जातियों से बसाया हुआ है। इन में से एक भी मूल में विदेशी नहीं है, प्रत्युत स्पष्ट ही सारी इसी देश की हैं।"

चन्द्रगुप्त के समय में भारत कैसा था? कौटल्य के अर्थशास्त्र और मैगस्थनीज़ के यात्रा-वृत्तान्त के आधार पर इसका वर्णन आगे किया जाता है।

पाटलिपुत्र नगर—गङ्गा के दक्षिण कूल पर इस सुन्दर नगर की स्थापना शैशुनाग वंश के महाराज उदयी या उदायी ने की थी। बौद्ध लेखकों का कहना है कि महाराज अजातशत्रु ने यह नगर बसाया था। मौर्य-काल में इसकी समृद्धि बहुत बढ़ गई। इस का नाम कुसुमपुर या पुष्पपुर भी था। यह नगर अनेक राजवंशों की राजधानी रहा है। इस की लंबाई ९ मील और चौड़ाई १½ मील थी। यह चारों ओर से लकड़ी के एक सुदृढ़ परकोटे से घिरा हुआ था। परकोटे के बाहर पुनः एक खाई थी। उस में सोन नदी का पानी आता जाता रहता था। लकड़ी के परकोटे में ६४ द्वार और ५७० बुर्ज थे। राजप्रासाद भी लकड़ी का बना हुआ था, पर था अत्यन्त सुन्दर। मुद्राराक्षस और कौमुदी-महोत्सव नाटकों में एक राज-प्रासाद का नाम सुगाङ्ग-प्रासाद लिखा है। सम्भवतः वह यही प्रासाद होगा। इस नगर के दूसरे घर भी बड़े सुन्दर थे। बाजारों में, हट्टों पर बड़ी सजधज रहती थी। नगर के प्रबन्ध के लिए एक नगर-समिति थी। इसके ३० सदस्य होते थे। इन में से पाँच पाँच सदस्यों की एक उपसमिति होती थी। ये उपसमितियाँ ६ थीं। एक

उपसमिति जन-गणना का हिसाब रखती थी। नगर-वासियों के जन्म-मरण का ब्योरा इसी के पास रहता था। दूसरी चुङ्गी एकत्र करती थी। तीसरी शिल्प और कलाओं का प्रबन्ध करती थी। चौथी का काम विदेशी लोगों पर दृष्टि रखना था, तथा बाहर से आए प्रतिष्ठित लोगों के स्वागत का ध्यान रखना था। पाँचवीं व्यापार की शुद्धता का निरीक्षण करती थी और छठी का काम था शिल्प की वस्तुओं की बिक्री आदि का प्रबन्ध करना। उस समय प्रत्येक नगर के प्रबन्ध की ऐसी ही व्यवस्था थी।

राज्य-प्रबंध—चन्द्रगुप्त सारे राज्य का एकाधिपति था। उस पर किसी और का अधिकार न था। तथापि वह अपने मन्त्रि-परिषद् की सम्मति से राज्य करता था, अपनी इच्छामात्र से काम नहीं करता था। दण्ड कठोर थे, अतः अपराध कम होते थे। गुप्तचर हर बात का ध्यान रखते थे। उन की दृष्टि से बड़ा-छोटा कोई बच न सकता था। बड़े बड़े राजकीय अफ़सरों के काम का निरीक्षण भी गुप्तचर करते रहते थे। अतः रिश्वत का लेना देना नाम-मात्र भी न था। न्यायालय में मिथ्याभाषण करने वाले को कड़ा दण्ड मिलता था। प्रत्येक के अधिकार की पूरी पूरी रक्षा होती थी। कोई किसी को निरर्थक दबा नहीं सकता था।

खेती—किसानों की उपज का चौथा भाग राजा को मिलता था। कहीं-कहीं लंबी नहरें भी खुदाई गई थीं। पानी सब को यथासमय मिलता था। कोई रिश्वत लेकर अधिक पानी नहीं दे सकता था। सूखे क्षेत्रों में बड़े-बड़े तालाब और झीलें बनाई गई थीं। इन से भी खेती के काम में सहायता ली जाती थी। इस महकमे से राज्य को आय बहुत होती थी। नहरों आदि का पानी बर्तने के लिए राज्य को कर देना पड़ता था।

स्वास्थ्य रक्षा—राज्य की ओर से प्रजा की स्वास्थ्य-रक्षा का बड़ा अच्छा प्रबन्ध था। अनेक आतुरालय और चिकित्सालय खुले हुए थे। वहाँ औषधियों का बड़ा भाण्डार रहता था। औषधियों की शुद्धता पर पूरा ध्यान रखा जाता था। आयुर्वेद बहुत उन्नत था। आवश्यकता पड़ने पर चीर-फाड़ का काम भी किया जाता था। यदि किसी की मृत्यु में अधिकारियों को सन्देह हो जाय तो मृतक शव "आशु मृतक परीक्षा" के लिए तत्काल राजकीय चिकित्सालय में भेजा जाता था। वहाँ विष आदि दिए जाने की सुपरीक्षा होती थी। अपराध पता लगने पर अपराधियों की जाँच होती थी। राजकीय चिकित्सा-स्थानों में सब चिकित्सा बिना फीस की जाती थी।

सामाजिक स्थिति—मौर्य राज्य में गार्हस्थ्य जीवन में बहुत अनुदारता न थी। विधवाओं के पुनर्विवाह होते थे। यदि किसी स्त्री का पति मर जाय, अथवा चिरकाल के लिए बाहर चला गया हो, अथवा ऐसी ही कोई अन्य परिस्थिति हो तो स्त्री को दूसरा विवाह कर लेने का अधिकार था। एक प्रकार का तलाक भी तब प्रचलित था। विवाह का विच्छेद हो सकता था। प्रतीत होता है कि नारद आदि धर्मशास्त्रकारों का मत जानकर आचार्य कौटल्य ने यह प्रथा चला दी थी। उन दिनों सती की प्रथा भी कहीं-कहीं प्रचलित थी।

चारों वर्ण अपना-अपना काम करते थे। ब्राह्मणों का समादर था। बौद्ध और जैन भिक्षु भी बहुत थे, पर विष्णुगुप्त के कड़े नियमों के कारण हर एक व्यक्ति घर छोड़ कर साधु नहीं बन सकता था। भिक्षु बनने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को न्यायालय से आज्ञा लेनी पड़ती थी। यदि न्याय-अधिकारी को निश्चय हो जाय कि

आज्ञा माँगने वाला व्यक्ति सदाचारी, विद्वान् और वैराग्यवान है, है, तब ही उसे भिक्षु बनने की आज्ञा मिलती थी। भिक्षु बनने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्त्री आदि के निर्वाह का प्रबन्ध कर देना पड़ता था। इस नियम के कारण बौद्ध लेखकों ने चाणक्य को अनेक बुरे नामों से स्मरण किया है, क्योंकि हर एक मनुष्य अनायास भिक्षुक नहीं बन सकता था।

मैगस्थनीज़ लिखता है कि आर्य लोग अपने कृषकों का बड़ा ध्यान रखा करते थे। जब क्षत्रिय सैनिक युद्ध कर रहे होते थे, तब उनके समीप ही किसान अपनी खेती करते रहते थे। किसानों को कोई कष्ट नहीं पहुँचाता था। किसानों को सेना में नौकरी नहीं देनी पड़ती थी। इस सुव्यवस्था के कारण भोजन सामग्री का बड़ा आधिक्य था।

रहन-सहन—भारतीय लोग सुन्दर आभूषण और सुन्दर वस्त्रों के बड़े पुजारी थे। इस काम के लिए वे चाँदी और सोने का बहुत प्रयोग करते थे। उनकी मलमल बहुत बारीक और फूलदार होती थी। वे रँगे वस्त्र भी पहनते थे। बहुधा उनके वस्त्रों पर सुनहरी काम किया होता था।

सत्य—भारतीय आर्य बड़े सत्यवादी और परस्पर विश्वास करने वाले होते थे। वे मुकदमे नहीं करते थे। चोरी कहीं दिखाई न देती थी। विदेशी लोगों पर इस बात का बड़ा प्रभाव पड़ा करता था। लोग घरों को ताले नहीं लगाते थे।

धर्म—आर्यों, बौद्धों और जैनों के अपने अपने मन्दिर थे। आर्य लोग अनेक देवताओं को पूजते थे। शिव और विष्णु की पूजा अधिक थी। गङ्गा की पवित्रता में लोग विश्वास रखते थे। राजा सब धर्मवालों का यथोचित आदर करता था।

व्यापार—मौर्य काल में राजकीय आय का एक बड़ा भाग व्यापार से प्राप्त किया जाता था, अतः व्यापार की रक्षा और उन्नति के लिए विशेष ध्यान दिया जाता था। कई अध्यक्ष इसके भिन्न भिन्न कामों के लिए नियुक्त थे। फ़ारस, मिश्र, अरब, लङ्का और चीन आदि देशों से भी भारत का घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। भारत में व्यापार का माल नदियों के मार्ग से नौकाओं द्वारा इधर-उधर जाता था, और विदेशों में समुद्री मार्गों से। इन समुद्रों में बड़े-बड़े जहाज़ चलते थे। स्थल मार्ग से व्यापार करने वाले एकत्र होकर काफ़ले के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते थे। अनेक विदेशी लेखकों ने भारत के समृद्ध समुद्री व्यापार का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है।

कर-प्राप्ति—कर-प्राप्ति का एक पृथक् विभाग था। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के अनुसार कर कम या अधिक हो जाता था। भूमि का कर प्रधान-कर था। खानों से हीरे, जवाहरात और सोना आदि निकाले जाते थे। औषध के निमित्त भी कई पदार्थ खानों से निकाले जाते थे। अनेक बार ये काम राजकीय प्रबन्ध से ही होते थे। जिन जिन देशों से सोना निकलता था, कौटल्य ने उन सब के नाम अपने अर्थशास्त्र में दिये हैं। खनिज पदार्थों को कार-खानों वाले लेते थे और उनके लिए विशेष कर देते थे। समुद्र से मोती, मूँगा आदि निकालने का विशेष प्रबन्ध था। नमक भी राज्य-प्रबन्धान्तर्गत ही निकाला जाता था।

सेना-प्रबन्ध—अर्थशास्त्री चाणाक्य सेना के सुप्रबन्ध में बड़ा विश्वास रखता था। वह इसे राज-स्थिति का एक प्रधान अङ्ग मानता था। इसलिए चन्द्रगुप्त की सेना का उसने बहुत ही अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। चन्द्रगुप्त की सेना में ६ लाख पदाति, ३०

सहस्र अश्वारोही, तथा ६ सहस्र रथ और हाथी थे। सेना का प्रबन्ध करने के लिए छः उपसमितियाँ थीं। पदाति, अश्वारोही, रथ और हाथियों की सेना का निरीक्षण चार पृथक् पृथक् उपसमितियाँ करती थीं। शेष दो में से एक का काम था रसद का प्रबन्ध और दूसरी का जल-सेना और उसके जहाज़ों का देखना। सेना को नक़द मासिक वेतन मिलता था। वेतन के विषय में कोई अनियम नहीं हो सकता था।

इतने पुराने काल में जब कि पश्चिम के लोग गहरे अन्धकार में सोए पड़े थे, और वहाँ फ़ारस और यूनान ही कुछ उन्नति के मार्ग पर जा रहे थे, भारत में एक अत्यन्त सुव्यवस्थित साम्राज्य विद्यमान था। उस साम्राज्य में अनेक ऐसे गुण थे, जो आज भी कई बड़े-बड़े साम्राज्यों में नहीं पाये जाते। मौर्य-साम्राज्य इतिहास पढ़ने वाले के हृदय पर एक विचित्र प्रभाव उत्पन्न कर देता है। इसका एक-मात्र कारण ब्राह्मण महामन्त्री विष्णुगुप्त है।

बिन्दुसार

चन्द्रगुप्त ने लगभग २४ वर्ष राज्य करके अपने पुत्र बिन्दुसार का राज्याभिषेक कर दिया। स्वयं वह तप करने चला गया। उसका परम हितैषी ब्राह्मण-मन्त्री विष्णुगुप्त या चाणक्य ही उस के पुत्र का भी मन्त्री था। चाणक्य ने अपनी पहली नीति स्थिर रखी और बिन्दुसार के काल में अनेक दाक्षिणात्य राज्य मौर्य सत्ता के अन्तर्गत कर दिए। इन राज्यों को पराजित करने में बिन्दुसार को देर तक युद्ध करने पड़े, पर अन्त में पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के मध्य की सारी भूमि बिन्दुसार के अधिकार में आ गई।

महाभारत के समय और उस से पूर्व भी कई ऐसे प्रतापी और वीर सम्राट् हो चुके थे, जो सारे भारतवर्ष के एक प्रकार से चक्रवर्ती राजा थे, अर्थात् समस्त भारत पर उनका एकच्छत्र राज्य था। महाभारत युद्ध के पश्चात् शताब्दियाँ बीत गईं, पर किसी एक राजा का इतना अधिकार नहीं हुआ। चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार के काल में मौर्य-साम्राज्य विस्तृत ही होता गया। अफ़ग़ानिस्तान से लेकर कलिङ्ग के सिवाय बङ्गाल तक और दक्षिण भारत के प्रायः सब प्रदेशों में मौर्य-पताका फहराने लगी। इसका श्रेय ब्राह्मण विष्णुगुप्त को ही है। उस समय के भारतीय तो उसे आश्चर्य-दृष्टि से देखते ही थे, पर आजकल के न केवल भारतीय ही प्रत्युत विदेशीय नीतिज्ञ भी उसे प्रतिष्ठा और विस्मय से देखते हैं। बिन्दुसार के दरबार में भी पश्चिम के कई राजाओं के राजदूत रहते थे।

बिन्दुसार के राज्य के अन्तिम दिनों में तक्षशिला के लोगों ने विद्रोह खड़ा कर दिया। महाराज की आज्ञा से कुमार अशोक उस विद्रोह को दमन करने के लिए भेजा गया। वह अभी तक्षशिला से कुछ कोस दूर ही था जब नगरवासी उसके स्वागत के लिए मंगलाचरण-सूचक चिह्नों के साथ आगे आगए। वे बोले—"हम महाराज (बिन्दुसार) और कुमार के विरुद्ध नहीं हैं, हमें तो अमात्य तंग करते हैं।" इस प्रकार बिना रक्तपात के वह विद्रोह प्रशान्त हुआ। अशोक प्रायः उज्जयिनी और तक्षशिला में रहा करता था।

बिन्दुसार लगभग २५ वर्ष राज्य करके परलोक सिधारा। उस की मृत्यु के समय अशोक राजधानी में न था।

अशोक

बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् मन्त्री-मण्डल ने अशोक को शीघ्र ही पाटलीपुत्र में बुला लिया। अब अशोक भारत का सम्राट् बना। तक्षशिला और उज्जयिनी के प्रबन्ध में अशोक ने अपना जो कौशल दिखाया था, वही अब उस ने सारे राज्य के प्रबन्ध में दिखाना आरम्भ किया।

अशोक का राज्याभिषेक—अशोक राजा तो बन चुका था, पर उस के विधिवत् अभिषिक्त होने के सम्बन्ध में आधुनिक लेखकों के दो मत हैं। कई विद्वानों का कहना है कि अशोक का राज्याभिषेक बिन्दुसार की मृत्यु के लगभग चार वर्ष पश्चात् हुआ और दूसरे विद्वान् कहते हैं कि अशोक का राज्याभिषेक उसके पिता की मृत्यु के कुछ दिन पश्चात् ही हो गया। अशोक के राज्य पाने के विषय में अनेक विद्वान् कहते हैं कि वह अपने ९९ भाइयों का वध करके सम्राट् बना था, पर दूसरे कहते हैं कि ऐसा नहीं हुआ। अशोक के कई शिलालेखों से पता लगता है कि उस के भाई उस के राज्य-काल में भी विद्यमान थे।

कलिङ्ग-विजय—अशोक को राज्य सँभाले लगभग बारह वर्ष हो चुके थे। आजकल का उड़ीसा प्रान्त अशोक के दिनों में कलिङ्ग नाम से प्रसिद्ध था। महाभारत-काल में और उससे पूर्व भी यह प्रदेश अपनी एक पृथक् सत्ता रखता था। इसके राजा बड़े शक्तिशाली रहे थे। चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार के काल में भी कलिङ्ग ने अपनी स्वतन्त्रता स्थिर रखी थी। बढ़े हुए मौर्य साम्राज्य के मन्त्री-मण्डल को यह बात बहुत खटकती थी। अशोक के सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् मौर्य राज्य में भारी

सैनिक तय्यारियाँ हुईं। अशोक कलिङ्ग को विजय करना चाहता था। कलिङ्ग पर उसने आक्रमण कर दिया। विशाल मौर्य-सेना का एक बड़ा भाग अपने पूरे दल-बल के साथ आगे बढ़ा। कलिङ्ग की सेना में साठ हज़ार से अधिक योद्धा थे। भयंकर संग्राम हुआ। रक्त की नदी बह निकली। जन-संहार का तो कहना ही क्या? कलिङ्ग के एक लाख आदमी समाप्त हुए। सेना के अतिरिक्त उनके सहायक आदि भी न बच सके। डेढ़ लाख बंदी हुए। इतने नर-संहार के पश्चात् कलिङ्ग में महामारी पड़ी। उसके कारण भी अनेक लोगों का प्राणान्त हुआ। अशोक विजयी हुआ।

इस विजय से समस्त उत्तर भारत अशोक के साम्राज्य में आ गया। अशोक ने कलिङ्ग का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। वह एक पृथक् प्रान्त बनाया गया। दक्षिण भारत के अधिकांश भाग पहले ही मौर्य साम्राज्य में मिल चुके थे, अब इस कलिङ्ग-विजय ने अशोक को प्रायः सारे भारत का एक अधीश्वर बना दिया। उसके भारत में हिमालय के प्रदेश और अफ़ग़ानिस्तान तक के प्रान्त सम्मिलित थे।

कलिङ्ग-विजय का अशोक पर प्रभाव—अशोक पहले से ही कुछ क्रूर स्वभाव का था। चाणक्य की नीति में से दमन का अंश उसके अन्दर अत्यधिक था। पर कलिङ्ग-विजय ने उसके चित्त की वृत्ति सर्वथा पलट दी। इस विजय का उस पर बड़ा मर्मस्पर्शी प्रभाव पड़ा। धर्म-भाव की छिपी हुई चिंगारी ज्वाला के रूप में धधक उठी। अशोक उदास रहने लग पड़ा। अन्त को उसे बौद्ध गुरुओं से शान्ति मिली। उसने घोषणा की कि वह भविष्य में युद्ध नहीं करेगा। वह शस्त्रधारी सैनिकों से नहीं, प्रत्युत काषाय-वस्त्रधारी भिक्षुकों द्वारा संसार को विजय करेगा।

जिस प्रकार विशाल कौरव-सेना के नाश की कल्पना से

वीर अर्जुन के हृदय में विषाद प्रविष्ट हुआ था, उसी प्रकार कलिङ्ग के असाधारण नर-संहार के पश्चात् अशोक का हृदय परमाहत हुआ। अर्जुन को भगवान् कृष्ण ने सँभाल लिया था तथा अर्जुन कर्तव्यमात्र कर रहा था। शुभ-कर्तव्य के लिए नर-संहार रुकावट नहीं, श्रेय है। पर अशोक ने केवल साम्राज्य के लिए ही लाखों लोगों की इहलोक यात्रा समाप्त कर दी। उसे विषाद हुआ, जिसमें पश्चात्ताप की मात्रा अधिक थी। उसके पास कोई कृष्ण नहीं था। सम्भवतः चाणक्य भी काल का ग्रास बन चुका था। अतः अशोक की मानसिक प्रवृत्ति बौद्ध आचार्यों के प्रभाव से बौद्ध-वैराग्य की ओर झुकी। ऐसी प्रवृत्ति ने चिर-काल के लिए क्षात्र-धर्म के तेज को मंद कर दिया।

अशोक ने दक्षिण के रहे-सहे छोटे राज्यों का नाश बंद कर दिया। उसने उन पर आक्रमण नहीं किए। यदि अशोक एक बार भी संकल्प कर लेता तो वह नकुल के समान योरुप तक दिग्विजय कर आता। पाण्डव नकुल कैस्पियन सागर तक पहुँच आया था। अशोक सिकन्दर से बढ़कर अपना सैनिक प्रभाव डाल सकता था। पर अशोक का मन और प्रकार का हो गया था। संसार में कदाचित् ही कोई राजा होगा, जिसने इस प्रकार अपनी दृष्टि बदली हो। ब्रह्मनिष्ठ वीतराग जनकों को भी कई युद्ध करने पड़े, परन्तु अशोक ने तो युद्ध का त्याग कर दिया, सर्वथा त्याग कर दिया। यह बौद्ध प्रभाव का फल था। इसमें एक ही बात भली थी कि अशोक ने अपने राज्य के प्रबन्ध में शिथिलता नहीं आने दी। सम्भवतः उसका मन्त्रीमण्डल इस प्रबन्ध के करने में बड़ा दक्ष था। इसी मण्डल के कारण मौर्य राज-नीति में कोई परिवर्तन नहीं होने पाया।

धर्म विजय—क्षात्र-विजय को छोड़ कर अशोक ने धर्म-विजय का पथ पकड़ा। सत्य, दया, दान, अहिंसा, त्याग और कोमलता आदि को ही वह धर्म समझता था। ये ऐसी बातें हैं, जो हर एक के लिए लाभकारी हैं। बौद्ध हो या जैन, वैदिक हो या नास्तिक सभी धर्म और मत वालों का इनसे सम्बन्ध पड़ता है। स्वयं बौद्ध मतानुयायी होकर भी सम्राट् अशोक ने एक सरल धर्म का प्रचार किया।

कलिङ्ग-विजय के एक या सवा वर्ष पश्चात् अशोक ने पूर्ण रूप से बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। उसके लगभग २½ वर्ष पश्चात् उसने अपनी पहली धर्म-घोषणा की। उसमें वह कहता है कि बौद्ध संघ की आज्ञा से ही वह इस धर्म-मार्ग का अनुसरण करने लगा है। धर्म-विजय के लिए अशोक ने विशेष योजनाएँ कीं। उनमें से कतिपय नीचे लिखी जाती हैं।

१—बौद्ध संघ की अध्यक्षता में उसने प्रचार का एक विभाग नियत किया। उसमें प्रचार को लगने वाले कर्मचारी नियत किये गये।

२—लोगों को सुखी करना धर्म का एक अङ्ग है, अतः प्रजा-जनों के कल्याण के लिए अशोक कहता है—"मैंने सड़कों पर बरगद लगवा दिए हैं। इनसे पशुओं और मनुष्यों को छाया मिलेगी। आमों के बगीचे भी लगवाए हैं, आठ-आठ कोस पर मैंने कुएँ खुदवाए हैं और शालाएँ (सराएँ) बनवाई हैं। अनेक स्थानों पर पशुओं और मनुष्यों के लिए प्याऊ लगवा दिए हैं। किन्तु यह काम बहुत थोड़ा है। पहले राजाओं ने और मैंने भी बहुत प्रकार का आराम दे कर लोगों को सुखी किया है। ये बातें मैं इस लिए करता हूँ कि लोग धर्म का आचरण करें।"

३—अशोक अपने राजकीय अध्यक्षों को कहा करता था कि शिकार में समय नष्ट न करो, धर्म का प्रचार करो। परस्पर द्वेष और निन्दा को त्यागो। अशोक की धर्म-प्रचार की कामना इतनी बढ़ी कि उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को धर्म प्रचारार्थ लङ्का भेजा। अशोक के प्रचार के कारण दूर-दूर देशों तक के निवासियों ने बौद्ध धर्म को ग्रहण किया।

४--अशोक ने अनेक चिकित्सा-स्थान भी बनवाए। वहाँ पशुओं और मनुष्यों की चिकित्सा बिना पैसा लिए होती थी।

५—अपनी धर्म-संबन्धी आज्ञाएँ प्रचलित करने के लिए अशोक ने अनेक शिला-लेख खुदवाए।

अशोक के शिलालेख—अशोक के प्रधान शिलालेख जो अभी तक मिले हैं, गिनती में चौदह हैं। ये शिलालेख भारत के दूर दूर के कोनों तक में पाये गए हैं। ज़िला पेशावर की यूसफ़ज़ई तहसील में शहबाज़गढ़ी का शिलालेख उत्तर पश्चिम का सब से परला शिलालेख है। कालसी ज़िला देहरादून का शिलालेख दूसरी दिशा में है। गिरनार (जूनागढ़ के पास) का शिलालेख काठियावाड़ के एक कोने में है। एक शिलालेख मैसूर राज्य में मिला है। इससे उत्तर-पश्चिम, पश्चिम और दक्षिण में अशोक के राज्य का विस्तार जाना जाता है। न जाने कितने ऐसे शिलालेख और थे, जो अब नष्ट होगए होंगे। ये शिलालेख बड़ी भारी शिलाओं पर खुदे हैं। मानसहरे का शिलालेख दो अत्यन्त भारी और चौड़ी शिलाओं पर है, उसे हमने स्वयं देखा है।

छोटे-छोटे १९ शिलालेख और मिल चुके हैं। इस प्रकार कुल ३३ शिलालेख अभी तक मिले हैं। इनमें से एक शिलालेख में

'अशोक' नाम मिलता है, और शेष सब में महाराज "प्रियदर्शी" लिखा है।

शिलाओं के अतिरिक्त अशोक ने जितने थंभे खुदवाए वे सब अत्यन्त सुन्दर और चुनार के पत्थर के हैं। चुनार से दूर देशों में वे कैसे भेजे गए, यह भी एक आश्चर्य की बात है। और पहाड़ों के बीच में खैबर घाटी के आगे अशोक की प्रसिद्ध दीवार आज भी 'काफिर कोट' के नाम से पुकारी जाती है।

इन शिलालेखों की लिपि—भारत की प्राचीन लिपियाँ पढ़ने का श्रेय विदेशी विद्वानों को है। उन्होंने अपने बहुमूल्य जीवनों के अनेक वर्ष लगाकर ये लिपियाँ पढ़ीं। इससे पहले इन लिपियों के सम्बन्ध में लोग बहुधा धोखा दिया करते थे। ये लेख दो लिपियों में हैं। मानसहरा और शहबाज़गढ़ी के शिलालेख खरोष्ठी लिपि में हैं और शेष सबकी लिपि ब्राह्मी है। भारत की देवनागरी, बङ्गला, गुजराती आदि लिपियाँ इसी पुरानी ब्राह्मी लिपि का रूपान्तर हैं।

स्तूप और विहार—धर्म-प्रचारार्थ अशोक ने सहस्रों स्तूप और विहार बनवाए। स्तूपों की बौद्ध लोग पूजा करते थे और विहारों में बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। इन्हें इन विहारों में अन्न और वस्त्र भी मिलते थे।

बौद्धों की तीसरी महासभा—बौद्धों की दो महासभाएँ पहले हो चुकी थीं। तीसरी महासभा सम्राट् अशोक की अनुमति से पाटलिपुत्र नगर में हुई। तिष्य अथवा उपगुप्त नामक बौद्धाचार्य इस सभा का सभापति था। बौद्ध धर्म में जो अनेक मतभेद हो गए थे, उन्हें इस सभा में दूर किया गया। बौद्ध धर्म को संसार-व्यापी धर्म बनाने का सूत्रपात भी इसी सभा में हुआ। उसका एक बड़ा

कारण अशोक था। अपने विशाल राज्य के संचालन के अनुभवों का उसने धर्म-प्रचार में प्रयोग किया।

अशोक के राज्य में शिक्षा का प्रचार—अशोक के राज्य में शिक्षा का बड़ा विस्तार प्रतीत होता है। शिलालेख बताते हैं कि उन्हें प्रजा का पर्याप्त भाग पढ़ सकता था। बौद्ध-विहारों में बड़े-बड़े आचार्य शिक्षा देते थे। यह शिक्षा आर्यों के शिक्षा-आदर्श के अनुसार बिना फीस दी जाती थी।

अशोक का शासन—अशोक का शासन सुदृढ़ परन्तु दया-पूर्ण था। वह एक शिलालेख द्वारा कहता है—"चाहे मैं खाता होऊँ, चाहे अन्तःपुर में होऊँ, चाहे शयनागार में, मैं प्रजा का कष्ट हर समय सुनूँगा। मेरा कोई नौकर उस कष्ट को मेरे तक पहुँचाने में देर न करे।" अशोक फिर कहता है—"छोटे राजाओं को मुझ से डरना नहीं चाहिए। मैं उन्हें कष्ट न दूँगा।" ये भाव थे जिनके अनुसार अशोक राज्य करता था। एक कलिङ्ग-विजय ने उसे कितना दयार्द्र बना दिया था।

अशोक का अन्तिम समय—धर्म में लगा हुआ अशोक दिन प्रतिदिन अधिकाधिक दान करता रहता था। एक बार जब वह पुनः दान करने लगा तब मन्त्री-परिषद् ने उसे रोक दिया। खिन्न अशोक ने अमात्यों से पूछा—"कौन अब पृथिवी का स्वामी है?" मन्त्री बोले—"देव भूमि के अधिपति हैं।" अश्रुपूर्ण नेत्रों से अशोक ने फिर कहा—"क्यों आप असत्य कहते हैं? हम राज्य से भ्रष्ट हो चुके।" उसी समय उसने भिक्षुसंघ को सूचित कर दिया कि राजा अब अपनी शक्ति से वंचित हो गया।

अशोक अन्त में एक आर्य राजा था। वह प्रजा के प्रतिनिधियों की अवहेलना नहीं करना चाहता था। उधर मन्त्री-मण्डल

जानता था कि यदि कोष समाप्त हो गया तो इतना बड़ा साम्राज्य क्षण भर में नष्ट हो जायगा। सेना को वेतन कहाँ से मिलेगा? राज्यकर्मचारी विना वेतन कैसे सन्तुष्ट रहेंगे, इत्यादि वातों के कारण उन्होंने अपना कर्तव्य पालन किया। राजा और मंत्री दोनों एक दूसरे को समझते थे। राजा ने राज्य त्यागने का निश्चय कर लिया। राजा का चरित्र भी कितना महान् है और मन्त्रियों की निर्भयता भी कैसी विस्मयोत्पादक है। भला संसार के कितने विश्व-विजयी राजा इतने महान् हुए हैं और कितनों के मन्त्री इतने निर्भीक थे।

कुणाल

अशोक के पश्चात्—अशोक के पश्चात् कुणाल ने राज-सिंहासन सँभाला। कुणाल पहले तक्षशिला का प्रवन्ध करता था। वह अत्यन्त रूपवान् और सच्चरित्र राजकुमार था। अशोक उस से वड़ा प्रेम करता था। जव कुणाल अभी तक्षशिला में ही था, तव उसकी एक विमाता ने भयङ्कर षड्यंत्र रच के तक्षशिला के अधिकारियों द्वारा कुणाल की आँखें निकलवाने का प्रवन्ध किया। अधिकारियों ने राजकुमार को अशोक की जाली आज्ञा दिखाई। उसे अपने पिता की आज्ञा समझ कुणाल ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी आँखें निकलवा दीं। जब अशोक को इस वात का पता लगा तो उसने षड्यन्त्रकारियों को कठोर दण्ड दिया। तक्षशिला के उस स्थान पर जहाँ कुणाल ने प्रसन्नता से अपनी आँखें निकल-वाई थीं, अशोक ने एक स्तूप वनवाया। यह स्तूप चीनी यात्री ह्यानच्वाङ्ग के समय तक वहीं विद्यमान था। कुणाल ने लगभग आठ वर्ष तक राज्य किया।

दशरथ—कुणाल के पश्चात् दशरथ को राजगद्दी मिली। उसने भी लगभग आठ वर्ष तक ही राज्य किया। कुणाल और दशरथ के काल की किन्हीं विशेष घटनाओं का अभी तक पता नहीं लगा।

सम्प्रति—अशोक के पश्चात् सम्प्रति का नाम भारतीय इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। वह कुणाल का पुत्र और दशरथ का भाई कहा जाता है। अपने पिता और भाई के राज्य-काल में भी राज्य-संचालन में उसका पर्याप्त हाथ था। सम्प्रति पहले उज्जयन का राज्य-प्रबन्ध करता था। उज्जयन में जैन सम्प्रदाय का बड़ा ज़ोर था। उस समय जैनों के सुहस्ती नाम के एक आचार्य वहाँ रहते थे। उनके सत्संग से सम्प्रति ने जैनधर्म की दीक्षा ली। राजा होने पर सम्प्रति ने जैनधर्म के विस्तार के लिए वही काम किया जो अशोक ने बौद्ध धर्म के लिए किया था। सम्प्रति के कारण ही जैन धर्म तामिल देश और राजस्थान में जमा। वह जैन-धर्म के प्रचारकों की बड़ी सहायता करता था। जैन-लेखकों ने लिखा है कि सम्राट् सम्प्रति सारे भारत का एकमात्र राजा था। सम्प्रति ने दया और उपकार के अनेक काम किए। सम्प्रति का राज्य नौ या दश वर्ष रहा।

मौर्य साम्राज्य का पतन—कई इतिहास लेखक कहते हैं कि अशोक के पश्चात् ही मौर्य राज्य का पतन आरम्भ हो गया था। परन्तु जैनग्रन्थों से स्पष्ट पता लगता है कि सम्प्रति के राज्य तक मौर्य सत्ता बराबर बनी रही।

शालिशुक—सम्प्रति के पश्चात् उसका पुत्र शालिशुक राजगद्दी पर बैठा। गार्गी संहिता में लिखा है कि वह राष्ट्र को पीड़ा देने वाला, अधार्मिक और धर्मध्वजी था। इसी के काल से

मौर्य साम्राज्य फिर छोटे छोटे भागों में बँटना आरम्भ हो गया। उत्तरापथ के अफ़गानिस्तान आदि प्रदेश स्वतंत्र हो गए। कलिङ्ग और आन्ध्र देश भी मौर्य सत्ता से निकल गये।

मौर्य राज्य के मन्त्री-परिषद् में अब पहला सा बल नहीं था। जिस विशाल साम्राज्य की आधारशिला चन्द्रगुप्त ने रखी थी, वह उसकी दसवीं पीढ़ी में बृहद्रथ के समय नष्ट हो गया। वह मगध राज्य जो भारत के इतिहास में कई बार अपनी चमक दिखा चुका था, अब फिर सोने लगा। शैशुनाग, नन्द और पहले मौर्य राजाओं ने मगध का ऐश्वर्य अथाह कर दिया था, पर तीन-चार अन्तिम मौर्य राजाओं के काल में वह मन्द पड़ गया।

दसवाँ अध्याय

शुंग, काण्व और सातवाहन वंश

अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ का सेनापति पुष्यमित्र था। उसने अपने स्वामी को मार कर मगध का राज्य हथिया लिया। पुष्यमित्र का वंश शुंग-वंश के नाम से प्रसिद्ध है। प्रतीत होता है कि मगध में कोई भारी क्रान्ति हुई होगी और उसी के फलस्वरूप पुष्यमित्र का अभिषेक हुआ होगा। यह अभिषेक ईसा से लगभग १८५ वर्ष पूर्व हुआ। सेना राजा बृहद्रथ से असन्तुष्ट होगी और उसी सेना ने राज्य पलट दिया होगा।

पुष्यमित्र—पुष्यमित्र एक शक्तिशाली राजा हुआ है। उस ने उत्तर भारत में फिर से एक सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित किया। उसके दो प्रतिद्वन्द्वी बड़े बलवान थे। एक कलिङ्ग का राजा

खारवेल और दूसरे थे बाख्त्र के यवन। इन दोनों शक्तियों से उस ने कई युद्ध किए। उसका राज्य शाकल या स्यालकोट से लेकर बङ्गाल के समुद्र तक और दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। उसने लगभग ३६ वर्ष तक राज्य किया।

अश्वमेध यज्ञ—पुष्यमित्र आर्य-सम्राट् था। वह वेद और आर्य-संस्कृति का परम पोषक था। अर्जुन के पड़पोते महाराज जनमेजय के पश्चात् उसी ने भारत में दो वार अश्वमेध यज्ञ किया। उसका यज्ञीय घोड़ा सिन्ध के किनारे आ निकला। उसे ग्रीक या यवन लोगों ने रोक लिया। घोड़े की रक्षा का काम पुष्यमित्र के पोते कुमार वसुमित्र के सुपुर्द था। उसने घोर संग्राम करके यवनों को परास्त किया और अपने घोड़े को छुड़ाया। इस काल तक पुष्यमित्र का साम्राज्य सिन्ध तक पहुँच गया होगा।

आचार्य पतञ्जलि—प्रातःस्मरणीय भगवान् पाणिनि मुनि ने संस्कृत का एक अनुपम व्याकरण रचा है। संसार भर के विद्वानों का मत है कि किसी भी भाषा का ऐसा व्याकरण नहीं वन सका। मञ्जु-श्री-मूलकल्प में लिखा है कि महाराज नन्द का एक मन्त्री वररुचि था। उसी का एक मित्र ब्राह्मण पाणिनि भी था। इस कारण जायसवाल का मत है कि वैयाकरण पाणिनि नन्दों के काल में हुआ। दूसरे विद्वान् कहते हैं कि पाणिनि का काल नन्दों से बहुत पहले का है। उन पाणिनि मुनि के छोटे-आकार के ८० पृष्ठ के ग्रन्थ पर पतंजलि ने २००० पृष्ठ का व्याकारण महा-भाष्य नामक एक अमूल्य टीका-ग्रन्थ रचा। वह पतंजलि इस महाभाष्य में लिखता है—"हम पुष्यमित्र का यज्ञ करा रहे हैं।" अर्थात् पुष्यमित्र के यज्ञ में पतंजलि सदृश विद्वान् पुरोहित का काम कर रहा था।

कलिङ्ग सम्राट् खारवेल—जब मौर्य-साम्राज्य निर्बल हो रहा था, तब कलिङ्ग में फिर एक राज-सत्ता सिर उठा रही थी। महाभारत और उससे पहले कालों से चेदि नाम का एक प्रसिद्ध राजवंश चला आ रहा था। उसी राजवंश में कलिङ्ग का राजा खारवेल हुआ। उसका एक बड़ा लंबा शिलालेख अब भी मिलता है। उड़ीसा में भुवनेश्वर के पास हाथी गुम्फा नाम की एक गुफा है। खारवेल का शिलालेख उसी गुफा में एक चट्टान पर खुदा हुआ है। भाषा उसकी है प्राकृत। उस शिलालेख पर खारवेल के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाएँ लिखी हुई हैं।

खारवेल की विजय—यह राजा जैन था। उस समय उड़ीसा या कलिंग में जैन लोग बहुत फैल गये थे। शिलालेख से पता लगता है कि खारवेल नौ वर्ष युवराज रहा। तत्पश्चात् २४ वर्ष की आयु में उसका महाराज्याभिषेक हुआ। इसने दक्षिण के राजाओं पर अनेक आक्रमण किए।

साकेत पर यवन आक्रमण—खारवेल जब अपने यौवन में उठ रहा था, तब पुष्यमित्र ने अभी राज न संभाला था और बृहद्रथ बहुत दुर्बल था। उस समय यवनों ने साकेत (अयोध्या) पर आक्रमण किया और वे पाटलीपुत्र तक बढ़ आए। इन को खारवेल ने ही भारत से भगाया था। प्रतीत होता है कि यवन आक्रमण को न रोक सकने के कारण ही प्रजा बृहद्रथ के विरुद्ध हो गई होगी, और प्रजा तथा मन्त्री-परिषद् की अनुमति से ही पुष्यमित्र ने राज्य सँभाला होगा। अब जब पुष्यमित्र अपनी शक्ति एकत्र कर रहा था, तभी खारवेल ने उत्तर तक अपनी विजय की।

पुष्यमित्र की नीति—पुष्यमित्र की नीति बड़ी कठोर थी। ऐसा होना था भी स्वाभाविक। अशोक आदि के काल से

दण्डनीति में कुछ शिथिलता आ रही थी। इसी शिथिलता ने मौर्य साम्राज्य का अन्त किया। अत्याचार बढ़ गया था, ढोंग वृद्धि पर था। अब एक ब्राह्मण राजा सिंहासन पर बैठा। उसका आदर्श मनु, महाभारत और गीता थे। उसने उनके अनुसार कठोर दण्ड से देश में पुनः एकाधिपत्य स्थापित किया। बौद्ध लेखक पुष्यमित्र को गोमिमुख्य नाम से पुकारते हैं। वे कहते हैं कि उसने बहुत से बौद्ध मन्दिर नष्ट करवाए, और इसीलिए वह उत्तर में अपने अनेक अफ़सरों सहित किसी पर्वत के गिरने से मर गया।

अग्निमित्र—पुष्यमित्र के पश्चात् उसका पुत्र अग्निमित्र राज्य का स्वामी हुआ। इसका राज्य सात या आठ वर्ष ही रहा। प्रतीत होता है कि कविकुल-गुरु कालिदास के मालविका-अग्निमित्र नाटक का नायक यही अग्निमित्र था। अग्निमित्र के अनन्तर शुंग वंश के आठ और राजा हुए, परन्तु उनकी कोई विशेश बात अभी तक नहीं जानी गई। शुंगों ने लगभग १०० वर्ष तक राज्य किया। अन्तिम शुंग राजा देवभूमि को उसके प्रधानामात्य वसुदेव ने मार कर स्वयं राज ले लिया।

काण्वबंश—शुंगों के समान काण्व लोग भी ब्राह्मण थे। ये यजुर्वेद के पढ़ने वाले और पक्के वैदिक थे। यजुर्वेद की काण्व शाखा पढ़ने से ही इन्हें काण्व या काण्वायन कहा जाता है। काण्व वंश के चार राजाओं ने कोई ४५ वर्ष राज्य किया। ये राजा धार्मिक थे और इनके सामन्त इनके आगे झुके रहते थे। सुशर्मा काण्ववंश का अन्तिम राजा था।

सातवाहन या आन्ध्र वंश—चन्द्रगुप्त का उल्लेख करते हुए आन्ध्रों का वर्णन किया गया है। मौर्य राज्य के विध्वंस के समय आन्ध्र पुनः प्रबल होने लगे। नासिक, उसके चारों ओर

का प्रदेश, और कर्णाटक आदि प्रान्त आन्ध्रों के ही राज्य में थे। आन्ध्र-वंश सातवाहन वंश के नाम से भी प्रसिद्ध था।

सिमुक—सातवाहन राज्य का स्थापन करने वाला सिमुक था। खारवेल ने उसे दबाने का यत्न किया, पर उसकी सत्ता बनी ही रही। वह ब्राह्मण और दृढ़ वैदिक था। उस ने अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किए। वह अपने नाम के साथ 'दक्षिणापथपति' लिखता था।

सातकर्णि—सिमुक का पुत्र सातकर्णि था। वह भी दक्षिण का एक प्रसिद्ध राजा हुआ। सातकर्णि ने एक बड़े सरदार की कन्या नायनिका से ब्याह करके अपने बल को बढ़ाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् जब कि उसके बालक अभी छोटे थे, महारानी नायनिका ही राज्य करती रही। इसके बहुत से सिक्के प्राप्त हो चुके हैं।

इस वंश के २९ राजा दक्षिण-भारत में हो चुके हैं। उन में पहले दो अधिक प्रसिद्ध हैं। इनका राज्य लगभग २२५ सन् ईसा तक स्थिर रहा। सातवाहन दरबार में प्राकृत भाषा का बड़ा दौर-दौरा था। उनके कवि प्राकृत में बड़ी उत्कृष्ट रचनाएँ करते थे। इनके शिला-लेख भी प्राकृत में हैं। कोंकण के बन्दर स्थान और पश्चिमी घाट के प्रसिद्ध नाके सातवाहनों की अधीनता में थे।

सातवाहनों का देवकुल—जिन मन्दिरों में मृत राजाओं की पत्थर की मूर्तियाँ रखी जाती थीं, उन्हें देवकुल कहते थे। भारत के राजकीय वंशों ने ऐसे अनेक देवकुल स्थापित किए। यदि वे मिल जाते तो भारत का इतिहास नष्ट न होता। अभी तक ऐसे दो देवकुलों की ही मूर्तियाँ मिलती हैं। पहली मूर्तियाँ हैं पाटलीपुत्र के शैशुनाग वंश के देवकुल की। इनके विषय में अभी तक विवाद

चल रहा है। दूसरी मूर्तियाँ टूटी हुई मिली हैं, परन्तु उनका विषय विवाद से परे है। वे निश्चय ही सातवाहनों के देवकुल की हैं। वह देवकुल सह्याद्रि के नानाघाट में था।

आन्ध्रराज्य का विस्तार—आन्ध्र राज्य का विस्तार खूब हुआ। समुद्री व्यापार से इनको बड़ी आय होती थी। एक ओर रोम तक और दूसरी ओर मलाया तक इन का व्यापार फैला हुआ था। जब मगध पर काण्व वंश का अन्तिम राजा सुशर्मा राज्य करता था, तब एक सातवाहन राजा ने ही उत्तर भारत पर चढ़ाई की थी। उसने सुशर्मा को परास्त करके काण्व वंश का अन्त कर दिया।

इस वंश का अभी तक विस्तृत वृत्तान्त नहीं मिला। पुराणों की कृपा से इस वंश के सब राजाओं के नाम तो सुरक्षित रहे हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

विदेशी आक्रमण

सिकन्दर के लौट जाने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर भारत को अपने राज्य में मिला लिया। मौर्य राज्य के पूर्वार्ध में किसी विदेशी को उत्तर पश्चिम के मार्ग से भारत में आने का साहस नहीं हुआ। परन्तु मौर्य राज्य के शिथिल होते ही अनेक विदेशी जातियों ने उत्तर पश्चिमीय मार्गों से भारत पर आक्रमण आरम्भ किए। ये जातियाँ थीं—यवन, पार्थव (पार्थियन), शक और कुशन। इन्होंने अपने आक्रमणों में कुछ सफलता प्राप्त की और पंजाब आदि में इन्होंने अपने राज्य भी स्थापित किए। यवन और

पार्थव जातियों के तो हिन्दुकुश पर्वत से पश्चिम में अपने राज्य थे, परन्तु शक और कुशन दो ऐसी जातियाँ थीं, जिनका कि अपना कोई स्थिर राज्य नहीं था।

यवन आक्रमण—दिमित—यवन राजाओं के अनेक सिक्के पंजाब से मिले हैं। उन से यवन-राजाओं का बहुत सा इतिहास ज्ञात हुआ है। यवनों का दिमित (दातामित्र ?) नाम का एक राजा था। उसने भारत पर आक्रमण करके शाकल या स्यालकोट को ले लिया। स्यालकोट पुराने मद्र-राज्य की राजधानी थी। पाण्डवों का मामा शल्य इस देश का राजा था, माद्री उसी की बहन थी। इसी शाकल में दिमित या दिमेत्र जम गया। दिमित ने राजगृह तक आक्रमण किया। खारवेल ने अपने आठवें वर्ष में राजगृह में ही उसका मुकाबिला किया। खारवेल से हार कर दिमित मथुरा को भाग गया। यवनों ने मध्यमिका नगर पर भी आक्रमण किया। यह मध्यमिका राजपूताना में चित्तौड़ से छः मील उत्तर-पूर्व एक नगरी थी। दिमित के आक्रमण लगभग ईसा से १८० वर्ष पूर्व हुए थे। पतञ्जलि के महाभाष्य में इन आक्रमणों की ओर संकेत किया गया है। दिमित का राज्य अफ़गानिस्तान से व्यास नदी तक फैल गया था।

खारवेल के शिलालेख से यह निश्चित होता है कि खारवेल, सातकर्णि और दिमित समकालीन थे।

मिनेन्द्र=मिलिन्द—यह दिमित का जामाता और यवनों का दूसरा प्रसिद्ध राजा हुआ है। इसका बौद्ध ग्रन्थों में बड़ा वर्णन मिलता है। बौद्ध इसे मिलिन्द नाम से लिखते हैं। इस के सिक्कों पर बौद्धों का धर्मचक्र बना हुआ है। यह अपने को धार्मिक अर्थात् बौद्ध कहता था। इसने गुजरात और चित्तौड़ तक विजय की। यह प्रजा-जनों का इतना प्रिय बन गया कि इसकी मृत्यु पर उसकी प्रजा

इसकी राख को अपने घरों में ले गई। भारत में बस जाने वाले दूसरे यवन लोगों ने भी मिलिन्द के समान भारतीय धर्मों में से किसी न किसी को ग्रहण कर लिया था।

पार्थव=पार्थियन लोग—कुछ दिन पहले ऐतिहासिक कहते थे कि उत्तर भारत पर पार्थव लोगों ने आक्रमण किए, पर अब यह बात इतनी ही मानी जाती है कि मौर्य साम्राज्य का हेरात का समीपवर्ती प्रदेश ही पार्थव लोगों ने जीता। इन का प्रसिद्ध राजा मिथरेडेटस हुआ है।

शक जाति—जिन्हें पुराणों में शक कहा गया है, उन्हें पश्चिम के लोग सीथियन कहते हैं; इनका मूल स्थान मध्य एशिया था। हमारे पुराने ग्रन्थों के अनुसार ये लोग भी कभी आर्य क्षत्रिय थे। मानव धर्मशास्त्र और महाभारत आदि का ऐसा ही मत है। जैन ग्रन्थों के अनुसार कालकाचार्य शकों को गुजरात में लाए। यदि उन लोगों का दूरवर्ती कोई आर्य सम्बन्ध न होता, तो बहुत सम्भव है कि कालकाचार्य उन्हें भारत में न लाते। सिन्ध से होते हुए और वहाँ के अनेक छोटे राज्यों को नष्ट करते हुए शक लोगों ने गुजरात में अपना अधिकार जमा लिया। सिन्ध से गुजरात तक पहुँचते हुए उन्हें एक ही वर्ष लगा। उन्हों ने कई छोटे-छोटे यवन राज्य भी नष्ट किए। सिन्ध में उन की राजधानी मीननगर थी। कई शक राजा अपने को क्षत्रप या महाक्षत्रप कहते थे। वे राजा किसी दूसरे अधिक बड़े राजा के अधीन होते थे। जो स्वतन्त्र शक राज्य था, उस का अधिपति अपने को साह-अनुसाहि (साहानुसाही या सरदारों का सरदार) कहता था। शाहनशाह शब्द इसी का नवीन रूपान्तर है। क्षत्रप शब्द पुरानी ईरानी भाषा का है और इसका अर्थ है हाकिम।

शक राजा समूचे दक्षिण को हड़प लेते यदि आन्ध्रराजा गौतमीपुत्र सातकर्णि घोर संग्राम करके उन्हें पीछे न धकेल देता। उस वीर ने इन्हें उज्जयन से बहुत परे नहीं जाने दिया। शकों ने मथुरा और मालवा को अपना विशेष केन्द्र बनाया।

शकों की पश्चिमीय क्षत्रपों की शाखा भारतीय इतिहास में बहुत शक्तिशाली थी। उनका पहला राजा नहपान था। उसने सन् ११६-१२३ तक राज्य किया। उसकी तीसरी पीढ़ी में एक बड़ा बलशाली राजा हुआ।

रुद्रदामा—वह सन् १३० में राज्य करता था। उसके एक शिलालेख की निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—'वह युद्ध के सिवा मनुष्य-वध न करता था। वह अनूप, आनर्त, मरु, कच्छ, सिन्धुसौवीर आदि देशों का राजा था। उसके राज्य में चोर आदि का भय न था। प्रजा उसमें अनुराग रखती थी। उसने यौधेयों को नष्ट किया। दक्षिणाधिपति एक सातकर्णि को उसने दो बार परास्त किया, पर पड़ोसी होने के कारण मारा नहीं। वह व्याकरण, तर्क और संगीत आदि शास्त्रों का ज्ञाता था। अनेक स्वयंवरों में राजकन्याओं ने उसे वरमालाएँ पहनाई थीं। उसने प्रजा के कल्याण के लिये एक बड़े भारी तालाब की मरम्मत कराई।'

एक शक राजा का ऐसा शिलालेख पढ़कर आश्चर्य होता है, कि आर्य संस्कृति ने किस प्रकार इनको अपना बना लिया था।

उस समय भारतीय संस्कृति इतनी बलवती थी कि अनेक यवन राजाओं के समान शकों ने भी यहाँ के धर्म ग्रहण कर लिए। अधिकांश लोगों ने भागवत या शैव धर्म ग्रहण किया। उनके शिलालेख संस्कृत में मिलते हैं। इससे जाना जाता है कि संस्कृत उनके दरबार की भाषा बन गई थी।

कई कई स्थानों पर शकों ने देर तक राज्य किया। लगभग १०० वर्ष इनकी सत्ता बनी रही। उज्जयन में विक्रमादित्य का उदय हुआ। उसने भारत में शकों का इतना विध्वंस किया कि लोग उसे शकारि कहने लगे।

विक्रम सम्बन्धी समस्या—चालीस वर्ष पहले ऐतिहासिक विक्रम के सम्बन्ध में एक कल्पना करते थे। उस कल्पना का तात्पर्य यह था कि ईसा से ५७ वर्ष पूर्व विक्रम नाम का कोई शक्तिशाली राजा नहीं हुआ, प्रत्युत गुप्त साम्राज्य का चन्द्रगुप्त ही प्रसिद्ध विक्रमादित्य था। उसी के नाम के साथ मालव संवत् जोड़ दिया गया है। इस विषय पर आधुनिक ऐतिहासिकों का कहना है कि यह कोरी गप्प है। जिन गुप्तों का अपना संवत् था, उनके नाम के साथ कोई दूसरा संवत् जोड़ा ही नहीं जा सकता। विक्रम एक उपाधि है, और भारत के अनेक राजा उसे धारण करते रहे हैं। यह उपाधि ईसा से ५७ वर्ष पहले भी उज्जयन के किसी राजा ने धारण की थी। वह राजा कौन था, इसके विषय में अभी विचार किया जा रहा है। कोई गर्दभिल्लों के एक राजा को विक्रमादित्य बताता है और कोई किसी और को। हम तो इतना ही कहते हैं कि विक्रम संवत् को चलाने वाला कोई बड़ा प्रतापी राजा मालवा में हुआ अवश्य था। कालिदास आदि महाकवि उसी के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। कालिदास का विक्रम-उर्वशी नाटक प्रच्छन्न रूप में इसी विक्रम से सम्बन्ध रखता है। इस नाटक से पता लगता है कि विक्रमादित्य का पिता महेन्द्रादित्य था। कथासरित्सागर के अन्त में भी पिता और पुत्र के यही नाम दिए हैं। पर यह समस्या कठिन है।

कुशन आक्रमण—शक जाति के समान कुशन जाति का मूल

स्थान भी मध्य एशिया था। वहाँ शकों और कुशनों के कई युद्ध होते रहते थे। कुशनों ने शकों को बहुत तंग किया। इसी कारण शक भारत (सिन्ध) की ओर चल पड़े। उनके पश्चात् कुशन स्वयं भी भारत में प्रविष्ट हुए। हिन्दुकुश के पूर्व में जो यवन आदि राजा थे, उन्हें जीत कर कुशन लोगों ने वहाँ अपना राज्य बना लिया।

कडफिसस प्रथम और द्वितीय—ईसा की पहली शताब्दी में कडफिसस प्रथम ने सिन्ध के कई भाग लेकर अपने राज्य का विस्तार फ़ारस की सीमा से सिन्ध तक कर लिया। उसका उत्तराधिकारी कडफिसस द्वितीय कुशन जाति का प्रभावशाली राजा हुआ। उसने सिन्ध से आगे भी अपना विस्तार आरम्भ किया। आक्रमण तो उसने काशी तक किए, परन्तु वह इन प्रदेशों को स्थिर रूप से जीत न सका। फिर भी उसने एक स्थिर और विशाल राज्य की आधार-शिला रख दी। उसका भावी भारत पर गहरा प्रभाव पड़ा।

बौद्ध आचार्य नागार्जुन—बौद्ध आचार्य नागार्जुन बौद्धों के महायान सम्प्रदाय का जन्मदाता था। मूलकल्प के अनुसार वह कडफिसस प्रथम के राज्यकाल में हुआ होगा। अश्वघोष उसके पश्चात् हुआ था। नागार्जुन १०६ वर्ष तक जीवित रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि नागार्जुन कडफिसस प्रथम के राज्य के पहले ही वर्षों में जीता होगा और बहुत वृद्ध होगा। उसकी मृत्यु के कुछ काल पश्चात् अश्वघोष का उदय हुआ होगा।

अश्वघोष—बौद्ध साहित्य का मर्मज्ञ, संस्कृत वाङ्मय का पण्डित, ब्राह्मण भिक्षु अश्वघोष इन्हीं के काल में था। मञ्जुश्रीमूलकल्प में यही लिखा है।

महाराज कनिष्क—कडफिसस द्वितीय के पश्चात् कनिष्क ने राजसिंहासन सँभाला। मूल-कल्प में इसे महातुरुष्क कहा है। अलबेरूनी भी ऐसा ही लिखता है। कनिष्क का अभिषेक ईसा की प्रथम शताब्दी के अन्त के किसी वर्ष में हुआ होगा। वह वीर, साहसी और प्रतापी राजा था। अपने जीवन का एक विशेष भाग उसने युद्धों में व्यतीत किया। कहते हैं लगभग चालीस वर्ष तक वह युद्ध ही करता रहा। उसने भारतीय सीमा एक बार पुनः बड़ी विस्तृत कर दी। यारकन्द, पार्थिया, काशगर और खुतन आदि देश उसने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिए। चीन राज्य से भी एक बार उसने टक्कर ली। काश्मीर का सुन्दर देश, जो महाभारत काल से अपनी स्वतंत्रता का आनन्द ले रहा था, कनिष्क के अधीन हो गया। दक्षिण में विंध्य पर्वत तक का देश उसने अपने राज्य में मिला लिया। उधर काशी तक का क्षेत्र उसके राज्य के अन्तर्गत हो गया था। कनिष्क के सिक्के सारनाथ और गोरखपुर जिले तक मिले हैं। इससे पता लगता है कि इस दिशा में भी उस का राज्य दूर तक फैल गया था। बुखारा और अफ़गानिस्तान तक में कनिष्क का शासन था।

राजधानी—कनिष्क की राजधानी पेशावर या पुरुषपुर थी। इसी राजधानी से वह दूर दूर के अपने साम्राज्य के सब भागों की रक्षा करता था।

कनिष्क और बौद्ध धर्म—अभिषिक्त होने के पश्चात् ही कनिष्क ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। कडफिसस आदि इसके पूर्वज शैवधर्मानुयायी थे, पर कनिष्क को बौद्धधर्म ही प्रिय लगा। बौद्धों की दृष्टि में कनिष्क एक धर्मशील और बड़ा ऊँचा व्यक्ति था। जिस प्रकार अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए अनेक

यत्न किए थे, वैसे ही कनिष्क ने भी इन यत्नों के करने में कोई कसर उठा न रखी।

बौद्धों की चौथी महासभा—अशोक के समय से लेकर कनिष्क के समय तक बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में अनेक हेर-फेर हो गए थे। कनिष्क का गुरु आचार्य पार्श्व था। अपने गुरु पार्श्व की अनुमति से कनिष्क ने एक महासभा बुलाने का निश्चय किया। वह सभा काश्मीर के कुण्डलवन नामक विहार में बुलाई गई। इस सभा में बड़े बड़े बौद्ध विद्वान् उपस्थित हुए। कई मास तक सभा अपना काम करती रही। विवाद के अनेक विषय स्पष्ट हुए। बौद्ध त्रिपिटक का एक प्रामाणिक भाष्य लिखा गया। उसी समय से बौद्ध धर्म की दो शाखाएँ हो गईं। उत्तर-भारत के बौद्ध महायान सम्प्रदाय के कहलाए और दक्षिण-भारत के बौद्ध हीनयान सम्प्रदाय के हुए। बौद्धों की यह चौथी महासभा थी। चीन आदि देशों में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार इसी सभा के पश्चात् से आरम्भ हुआ। मध्य एशिया में तो बौद्ध भिक्षुओं का बड़ा समारोह होने लगा था।

पहले कई ऐतिहासिक लोगों का विचार था कि अश्वघोष कनिष्क के काल में हुआ था, परन्तु अब यही माना जाने लगा है कि वह उससे कुछ पहले हो चुका था।

कनिष्क का विद्या-प्रेम—यद्यपि कनिष्क को कई युद्ध लड़ने पड़े; तथापि वह इतना विद्या-रसिक था कि अपने अवकाश के समय में सदा धर्म-ग्रन्थों का पाठ किया करता था। वह विद्वानों का बड़ा आदर करता था। आयुर्वेद की इसने बड़ी उन्नति की। आयुर्वेद की चरक-संहिता का संस्कार करने वाला चरक वैद्य इसी के दरबार वाला चरक था, यह बात हमें सत्य प्रतीत नहीं होती।

इसके दरबार में भी याजुष चरक-शास्त्र का पढ़ने वाला एक चरक वैद्य था, परन्तु चरक-संहिता का संस्कर्ता उससे पहले हो चुका था। तक्षशिला के विश्व-विद्यालय की कनिष्क बड़ी सहायता करता था। इसके राज्यकाल में उसकी दशा बड़ी अच्छी थी। वह सब धर्मों का आदर करता था।

कला-प्रेम—वास्तु-कला से कनिष्क को बड़ा प्रेम था। उसने और उसके राजकर्मचारियों ने कई अत्यन्त सुन्दर मन्दिर बनवाए। उसके काल की बनी हुई बुद्ध-मूर्तियाँ भी सुन्दर हैं। कनिष्क का सोने का सिक्का भी चलता था।

मृत्यु—वृद्धावस्था में कनिष्क ने चीन पर आक्रमण करने का विचार किया। जब वह इस काम के लिए जा रहा था, तब मार्ग में वह मन्त्री के हाथ से मारा गया।

उत्तराधिकारी—कनिष्क के दो पुत्र थे—वाशिष्क और हुविष्क। वाशिष्क का पूरा पता नहीं लगता। गद्दी पर हुविष्क बैठा। वह भी अपने पिता के समान विद्याप्रेमी और सब धर्मों के विद्वानों का आदर करने वाला था। मथुरा में उसने एक सुन्दर विहार निर्माण कराया। काश्मीर में उसने हुविष्कतर नाम का एक नगर बसाया। चीनी यात्री ह्वान च्वाङ्ग अपनी काश्मीर यात्रा के समय इसी नगर के विहार में ठहरा था।

वासुदेव—हुविष्क के पश्चात् वासुदेव राजा बना। वह शैव धर्म का अनुयायी था। उसके सिक्कों पर शिव और नान्दी की मूर्ति है।

कुशन राज्य का पतन—वासुदेव अपने पिता और पितामह के समान शक्तिशाली न रहा। अफ़गानिस्तान और मध्य एशिया स्वतन्त्र हो गए। एक महामारी भी वासुदेव के साम्राज्य में फूट

पड़ी। प्रजा दुखी होने लगी। मध्यभारत के प्रदेश भी स्वतन्त्र होने लगे। फिर भी वासुदेव के उत्तराधिकारी पंजाब में ईसा की तीसरी शताब्दी तक राज्य करते रहे। उस समय नाग-वंश और गुप्त-वंश का तेज बढ़ने लगा था। उसी तेज से तब यह वंश परास्त हो गया।

बारहवाँ अध्याय

ब्राह्मण साम्राज्य का पुनरुद्धार

नाग वंश=भारशिव वंश—जिस समय बौद्धमतावलम्बी कुशन शक्ति क्षीण हो रही थी, उसी समय विदिशा और कौशाम्बी के समीप भारत के मध्य में एक नया ब्राह्मण राजवंश उन्नति प्राप्त कर रहा था। इस वंश के लोग पक्के शैव थे, अतः उनके नाम के साथ शिव शब्द लगा रहता है। भारशिव का अभिप्राय भी शिव के उपासकों से ही है। ये लोग अपने आप को अन्त में वाकाटक भी कहने लग पड़े थे। इस वंश के कुछ एक राजाओं के नामों के पीछे नाग शब्द जुड़ा है, और इनके सिक्कों पर नाग (=साँप) की मूर्ति पाई जाती है, अतः पुराणों में इस वंश को नागवंश लिखा गया है। इस नागवंश का महाभारत-कालीन नागों से कोई सम्बन्ध था या नहीं, यह अभी अस्पष्ट है। नाग-शासन में भारशिव प्रधान थे, और कई गण-राज्य भी उनके अन्तर्गत थे। मथुरा और पद्मावती में इनके केन्द्र थे।

भारशिव राजा—जिस समय कुशन शक्ति अभी ऐश्वर्य में थी, उसी समय भारशिवों का उदय हो गया था। इनका पहला

राजा शेषनाग था, और उसके पश्चात् छः सात और साधारण राजा हुए। तत्पश्चात् ईस्वी सन् १४० के लगभग नव नाग का राज्य आरम्भ हुआ। उसका पुत्र वीरसेन था। उसके पश्चात् और कई नाग राजा हुए। इन्हीं का अन्तिम राजा रुद्रसेन या रुद्रदेव था। जिसके हाथ से गुप्त महाराज समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त का राज सँभाला।

भारशिवों के अश्वमेध—"भारशिवों ने दश अश्वमेध यज्ञ किये थे। उन्होंने अपनी शक्ति से भागीरथी के पवित्र जल से अपना अभिषेक कराया था। वे अपने कन्धों पर शिव का चिह्न धारण करते थे।" ये शब्द एक शिलालेख के हैं और भारशिवों के भावों को भली प्रकार प्रकट करते हैं। दस अश्वमेध यज्ञों का करना कोई साधारण बात नहीं है। जिन ब्राह्मण राजाओं ने इतने अश्वमेध यज्ञ किये होंगे, उन की सम्पत्ति और शक्ति बहुत बढ़ गई होगी।

शिव-मंदिर—भारशिव राजाओं ने अनेक शिवमन्दिर निर्माण कराये थे। उनमें से भूभार मन्दिर के भग्नावशेष अब भी मिलते हैं। यह स्थान नागोद रियासत, बघेलखण्ड में है।

प्रवरसेन प्रथम—इन्हीं भारशिवों का एक भाग वाकाटक का था। उन का राजा प्रवरसेन (सन् २४८—३४४) अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ है। प्रवरसेन ने चार अश्वमेध किए। इस दृष्टि से वह शुंगवंशी-पुष्यमित्र और दक्षिणापथ के सम्राट् सातकर्णि से भी बढ़ गया था। प्रवरसेन ने भारशिवों की परिपाटी को छोड़ कर सम्राट् का शब्द अपने नाम के साथ लगाया। उत्तर और दक्षिण का बहुत सा भाग इस के राज्य में था।

———

तेरहवाँ अध्याय

गुप्त साम्राज्य

नागवंश की शक्ति पर्याप्त थी, पर अत्यधिक न थी। कुशन और सातवाहन राजाओं के पश्चात् भारत में कई क्षत्रिय जातियों ने अपने छोटे-छोटे राज्य पुन: स्थापित कर लिए थे। इन में से शिवि, मालव, यौधेय और लिच्छवि विशेष स्मरणीय हैं। ये सारे गण राज्य थे—अर्थात् इन में राजा चुना जाता था। यह थी उत्तर भारत की दशा। दक्षिण में भी अवस्था कुछ कुछ ऐसी ही थी।

सन् ३१९ ईस्वी—इस सन में भारत में एक नए राजवंश का प्रदुर्भाव हुआ। यह वंश गुप्त नाम से प्रसिद्ध है। गुप्त-वंशीय लोग भी क्षत्रिय थे। जिस वैदिक धर्म का जीर्णोद्धार शुंगों, काण्वों और सातवाहनों ने किया था, तथा जिस के उद्धार के लिए भारशिवों ने अपनी सारी शक्ति व्यय की थी उसी की रक्षा के लिए अब भारत में एक नई राज्य-शक्ति का उत्थान हुआ।

चन्द्रगुप्त—इस वंश का पहला प्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्त है। उसके पूर्वज साधारण क्षत्रिय थे, परन्तु वह ऐश्वर्य का इच्छुक था। सन् ३१६-२० में राजसिंहासन पर बैठ कर उस ने अपना संवत् चलाया। यह संवत् भारतीय इतिहास में गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध है। इस राजा ने अपना सोने का सिक्का भी चलाया। शिला-लेखों में उसे 'महाराजाधिराज' कहा

गया है। लिच्छवि-वंश की एक राजकुमारी से विवाह करके उस ने अपना बल बहुत बढ़ा लिया। वह वीर जाति उस की सहायक हो गई। उन्हीं की सहायता से उसने अपने आसपास के कई छोटे राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया। बढ़ते-बढ़ते उस का राज्य प्रयाग तक जा पहुँचा। चन्द्रगुप्त ने संवत् चलाने के पश्चात् लगभग १० वर्ष तक राज्य किया।

समुद्रगुप्त—सन् ३३० के समीप समुद्रगुप्त राजा बना। उस का एक प्रसिद्ध शिला-लेख प्रयाग के दुर्ग में एक स्तम्भ पर खुदा हुआ है, उस लेख से पता लगता है कि वह बड़ा विजयी राजा था। उस ने सम्राट् की उपाधि धारण की थी। अनेक युद्धों में लड़ने से उस के शरीर पर कई घाव पड़ गए थे। इसी लिए कुछ पाश्चात्य ऐतिहासिक उसे भारतीय नेपोलियन कहते हैं। समुद्रगुप्त ने पहले उत्तर भारत पर विजय आरम्भ की। जो राजा उस के अत्यधिक विरोधी थे, उनका उसने समूल नाश किया और उन के प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया। पहले युद्ध में उस ने पाटलिपुत्र नगर जीता और तत्पश्चात् उत्तर भारत के कई अन्य स्थान जीतता हुआ वह काश्मीर तक जा पहुँचा। फिर वह मध्य-भारत की जङ्गली जातियों की ओर बढ़ा। ये जातियाँ युद्ध-प्रिय थीं। उन को परास्त करने में उसका पर्याप्त समय लगा। उन पर विजय प्राप्त कर के वह दक्षिण कोसल के राजा महेन्द्रपाल से जा लड़ा। उसे जीत कर वह उड़ीसा के समुद्री तट के साथ साथ दक्षिण की ओर गया। दक्षिण में एक एक करके सब राज्य उस के अधीन हो गये। इस प्रकार वह नीलौर तक पहुँच गया और वहाँ से फिर पाटलिपुत्र को लौटा। दक्षिण के राजाओं को उस ने मारा नहीं प्रत्युत अपना कर-दाता बना लिया। उस की शक्ति इतनी बढ़ गई

थी कि कामरूप (आसाम), कुमाऊँ और मालवा आदि के कई राजाओं ने स्वयं ही उसे कर देना आरम्भ कर दिया और उस से मित्रता कर ली।

अश्वमेध यज्ञ—समुद्रगुप्त जहाँ गया वहीं उसकी विजय हुई। मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त के पश्चात् इतनी समृद्धि अन्य किसी राजा की नहीं हुई थी। विजय और सम्पत्ति की दृष्टि से वह अश्वमेध का पूरा अधिकारी हो गया था। राजधानी को लौट कर उस ने यज्ञ का पूर्ण प्रबन्ध किया। चारों दिशाओं के वैदिक विद्वान् राजधानी में एकत्र हुए। उन की दक्षिणा के लिए सम्राट् ने विशेष रूप के सोने के सिक्के बनवाए। उन पर यज्ञ के घोड़े का चित्र था। ये सिक्के उस ने उन राज-सेवकों को भी बाँटे जो भयानक युद्धों में उस के साथी थे। उस के अश्वमेध की बड़ी धूम थी।

समुद्रगुप्त का चरित्र—समुद्रगुप्त की वीरता का परिचय तो उसकी दिग्विजय से ही मिलता है। कई सिक्कों पर समुद्रगुप्त जीवित सिंह को पैर से कुचलता हुआ दिखाया गया है। इस के अतिरिक्त मूलकल्प में लिखा है कि यह बड़ा शक्ति-शाली, दैवीशक्ति वाला, दण्ड-नियम में कड़ा, अप्रमत्त, अत्यन्त सावधान और यज्ञों से प्रेम करता था। वह यद्यपि अपने धर्म पर दृढ़ था, तथापि दूसरे मत वालों पर क्रूरता नहीं करता था। लंका के बौद्ध राजा को बुद्ध-गया में बोधि विहार बनाने की उसने आज्ञा दी थी।

समुद्रगुप्त की प्रजा विविध भोगों से युक्त थी और उसके ऐश्वर्य का अन्त न था।

समुद्र-द्वीपों पर समुद्रगुप्त का राज्य—समुद्रगुप्त के प्रयाग के शिलालेख में लिखा है कि वह सिंहल (लङ्का) आदि सारे द्वीपों के राजाओं से पूजा जाता था। सारे द्वीपों से तात्पर्य

उन द्वीपों से है कि जहाँ भारतीय लोगों का राज्य था। ये द्वीप चम्पा आदि हैं।

उस समय संसार भर में समुद्रगुप्त के सदृश दूसरा योद्धा न था। वह अफ़गानिस्तान से परे सासानियन राजा को हरा सकता था, परन्तु वह पक्का आर्य था, निरा साम्राज्यवादी नहीं था। वह तो धर्मानुसार विजय कर रहा था। आर्य-धर्मशास्त्र में भारत से परे जाना पाप है, अत: वह धर्मशास्त्र के विरुद्ध नहीं गया। चम्पा आदि द्वीप और अफ़गानिस्तान तक के प्रदेश भारत में ही थे, अत: उन सब का वह एक-मात्र सम्राट् हो गया।

संस्कृत विद्या की उन्नति—राजाश्रय के बिना विद्योन्नति कठिन हो जाती है। कनिष्क के काल में आर्य-शास्त्र का ह्रास हो रहा था। भारशिवों ने उस ह्रास को रोका। न्याय और वैशेषिक शास्त्र के अनेक टीका-ग्रन्थ शैवाचार्यों ने उन्हीं दिनों लिखे होंगे। समुद्रगुप्त के काल से तो संस्कृत की उन्नति बहुत बढ़ी। वह स्वयं विद्या और कला का प्रेमी था। संगीत और वीणा का उसे बड़ा प्रेम था। उस के कुछ सिक्कों पर दिखाया गया है कि वह बैठा हुआ वीणा बजा रहा है।

चन्द्रगुप्त दूसरा (विक्रमादित्य)—लगभग ४५ वर्ष राज्य कर के सन् ३७५ में समुद्रगुप्त परलोक सिधारा। उस का उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय था। कई ग्रन्थों में इसका नाम विक्रमादित्य लिखा है। समुद्रगुप्त के जीवन का अधिकांश भाग युद्धों में बीता था। वह प्रजा की ओर यथोचित ध्यान नहीं दे सका था। उसका राज्य सुख का राज्य था। पर चन्द्रगुप्त द्वितीय ने प्रजा का इतना ध्यान किया कि प्रजा-जन उस से अत्यधिक प्रेम करने लग पड़े। वह न्यायप्रिय भी पूरा था।

कई लोगों का मत है कि यही चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) विक्रम संवत् वाला प्रसिद्ध विक्रमादित्य है। इसी के राज-दरबार में कालिदास, वराहमिहिर आदि विद्वान् रहते थे। यह बात सत्य नहीं। गुप्तों का अपना संवत् है और उस संवत् का विक्रम संवत् से कोई सम्बन्ध नहीं। दूसरे लोगों का मत है कि उज्जयन का प्रसिद्ध विक्रमादित्य सातवाहन वंश का कोई राजा था। यह बात कुछ अधिक जँचती है। परन्तु इतना तो सत्य है कि गुप्त विक्रम का, विक्रम संवत् वाले विक्रम से कोई सम्बन्ध नहीं।

फ़ाहियान—कनिष्क के काल से चीनी बौद्ध धर्म का प्रचार हो रहा था। चीन के लोगों की भारत में बड़ी श्रद्धा हो गई थी। अपने धर्म के मूल-तत्वों को जानने के लिए और अपने धार्मिक तीर्थ-स्थानों को देखने के लिए अनेक चीनी भारत आने के लिए लालायित थे। उनमें से अधिक साहसी लोग समय समय पर भारत-यात्रा करते रहे हैं। फ़ाहियान उन सब में पहला था। उसने अपनी भारत-यात्रा का वृत्तान्त भी लिखा था। चीन से चलकर पुनः घर लौटने में उसे पूरे १५ वर्ष लगे। उसने ६ वर्ष भारत में पर्यटन किया। सन् ३९९ में वह घर से चला और सन् ४१४ के अन्त में वह घर पहुँच गया। उसने भारत में रहकर बौद्ध धर्म का गम्भीर अध्ययन किया। जाते हुए वह अनेक धर्म-ग्रन्थ अपने साथ ले गया।

भारत वर्णन—फ़ाहियान कहता है—"पाटलिपुत्र नगर की अच्छी उन्नति है। उस में सुन्दर राजभवन विद्यमान हैं। अशोक का राजप्रासाद अभी तक देखा जा सकता है। पाटलि-पुत्र तथा भारत के और भी कई नगरों में बौद्ध-विहार बने हुए हैं।

भिक्षु लोग उन में निवास करते हैं और अपने ग्रन्थों का पठन पाठन करते रहते हैं। भिन्न-भिन्न मतों में द्वेष नहीं है। भारत के लोग सुखी और धनवान हैं। दान का बड़ा प्रचार है। उसी दान से अनेक आतुरालय चलते हैं। टैक्सों का भार कम है। दण्ड-नियम कड़े नहीं हैं। फाँसी के दण्ड का तो सर्वथा अभाव है। बार-बार के अपराधी का हाथ काट दिया जाता है। साधारण अपराधों के लिए जुर्माना होता है। बाज़ारों में मांस नहीं बिकता। न कोई शराबी दिखाई देता, और न शराब की दुकानें। सड़कें सुन्दर और आराम वाली हैं। प्रबन्ध इतना अच्छा है कि चोर या डाकुओं का कहीं चिह्न-मात्र भी नहीं पाया जाता।"

फ़ाहियान का खींचा हुआ भारत का चित्र एक स्वर्गीय युग का पता देता है। चन्द्रगुप्त दूसरे ने लगभग ४० वर्ष राज्य किया।

कुमारगुप्त (महेन्द्रादित्य)—सन् ४१५ में कुमारगुप्त राज्याधिकारी हुआ। गुप्त-साम्राज्य के वैभव को उसने कम नहीं होने दिया, प्रत्युत कई एक नवीन प्रदेशों को जीत कर उसने एक अश्वमेध यज्ञ किया। उस अवसर पर उसने अपना सोने का सिक्का प्रचलित किया। वे सिक्के अब भी कहीं कहीं मिले हैं। इसके राज्य में पहले तो शान्ति रही, पर जब यह वृद्ध हुआ तब हूणों ने भारत पर भयङ्कर आक्रमण किया।

हूणों का आक्रमण—तिब्बत के एक पुराने ग्रन्थकार ने इस आक्रमण के सम्बन्ध में लिखा है—महाराज महेन्द्रसेन (कुमारगुप्त) का जन्म कौशाम्बी के प्रदेश में हुआ था। उनका एक पुत्र अत्यन्त बाहुबल वाला था। जब वह कुमार बारह वर्ष का हो चुका तो तीन विदेशीय शक्तियों ने महेन्द्र के राज्य पर आक्रमण

किया। वे शक्तियाँ थीं—यवन, पल्लव और शक। उन्होंने गान्धार जीत कर गङ्गा के उत्तरीय प्रान्त ले लिए। कुमार स्कन्दगुप्त अभी तेरहवें वर्ष में जा रहा था। शत्रु को रोकने के लिए उसने पिता की आज्ञा चाही। शत्रु सेना तीन लाख थी। उसका संचालन विदेशी राजा कर रहे थे। यवनराज उन सब में मुख्य था। कुमार स्कन्द-गुप्त के पास दो लाख सेना थी। उसका संचालन ५०० सरदार करते थे। वे सब कट्टर हिन्दू तथा मन्त्री-मण्डल के सदस्यों के पुत्र आदि थे। स्कन्दगुप्त ने विद्युत् के वेग के समान शत्रु सेना पर आक्रमण कर दिया। क्रोधाविष्ट कुमार के माथे की नाड़ियाँ तिलक के समान जँचती थीं। उसका शरीर फौलाद का हो गया था। कुमार ने शत्रु सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया और विजय प्राप्त की। लौटने पर पिता ने कुमार का अभिषेक कर दिया और कहा—"अब तुम राज्य करो।" वह स्वयं धर्मपरायण हो गया।

स्कन्दगुप्त—सन् ४५५ के समीप वह भारत का राजा बना। गुप्तों में से स्कन्दगुप्त सब से बड़ा था। अपनी तेरह वर्ष की अवस्था में जो कठिन काम उसने किया, संसार के इतिहास में वह थोड़े ही बालकों ने किया होगा। इस युद्ध के बारह वर्ष पश्चात् तक स्कन्दगुप्त को हूणों से युद्ध करने पड़े। उसने तीनों मुख्य राजाओं को पकड़ लिया और उनका प्राणान्त कर दिया। इसके पश्चात् उसका राज्य बड़ी शांति का राज्य रहा।

वे हूण जिन्होंने चीन और योरप के कई भाग थोड़े ही काल में नष्ट-भ्रष्ट कर दिए थे, जिन्होंने विशाल रोम साम्राज्य को समूल नष्ट किया था, जो रक्त की नदियाँ बहा देने में अपना गौरव समझते थे, जो नृशंस कर्मों के करने में अणुमात्र संकोच नहीं

करते थे, जो स्त्री, बाल और वृद्धों को भी मार देते थे; वही हूण भारत में स्कन्दगुप्त के कारण कुछ देर के लिए दब गए। उनकी बढ़ती हुई बाढ़ को रोक देना स्कन्दगुप्त का एक महान् कार्य था। स्कन्दगुप्त का राज्य कम से कम ४६७ ईस्वी अर्थात् बारह वर्ष तक रहा। इतने वर्षों के उस के सिक्के मिल चुके हैं।

स्कन्दगुप्त के पश्चात्—स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य क्षीण होने लग पड़ा। उस की कई शाखाएँ हो गईं। अनेक शाखाओं में विभक्त होने के कारण राज्य-शक्ति बँट गई। स्कन्दगुप्त का उत्तराधिकारी बुधगुप्त था। वह सन् ४६६ में राज्य कर रहा था। उसी के काल में गुप्त साम्राज्य का ह्रास आरम्भ हुआ। वह लगभग सन् ५०० तक राज्य करता रहा। उस के पश्चात् सन् ५१० में फिर दूसरी बार हूणों ने भारत पर आक्रमण किया और ग्वालियर तक का प्रदेश उन्होंने ले लिया।

हूण पन्द्रह-सोलह वर्ष तक पश्चिमोत्तर भारत में अपना आधिपत्य रख सके। उनका राजा तोरमाण था। हूणों ने शाकल या स्यालकोट को अपनी राजधानी बनाया हुआ था, और वहीं से सारे भारत में लूटमार का काम करना चाहते थे। तोरमाण का पुत्र मिहिरकुल था। बालादित्य दूसरे ने एक बार इस मिहिरकुल को काश्मीर में भगा दिया था।

इस प्रकार गुप्तों की वह शक्ति जो आर्य धर्म के लिए और आर्य-संस्कृति की रक्षा के लिए उठी थी, जिसने कुशन राज्य का अन्त करके भारत को सुख की साँस लेने का समय दिया था, जिसने योरुप और चीन तक पहुँची हुई अजेय हूण शक्ति का संहार किया था, जिस ने संस्कृत

भाषा का फिर एक चक्र चला दिया था, वही दुर्दान्त शक्ति भारतीय इतिहास के रंगमञ्च पर अपना असाधारण काम करके प्रशांत हो गई। यह छठी शताब्दी ईसा का मध्य-काल था।

चौदहवाँ अध्याय

यशोधर्मन् और थानेसर के मौखरी या वर्धनकुल

यशोधर्मन् विष्णुवर्धन—यह एक बड़ा प्रतापी राजा था। इसके वंश का कोई निश्चित पता नहीं लगा। जायसवाल का मत है कि इसके नाम के साथ लगी वर्धन उपाधि बताती है कि संभवतः यह हर्षवर्धन का ही कोई पूर्वज हो। उसके दो शिलालेख मिले हैं। मन्दसोर का शिलालेख बड़ा प्रसिद्ध है। संभव है मंदसोर उसकी राजधानी हो। मन्दसोर का लेख एक विजय-स्तम्भ पर है। उसका आशय यह है कि—"जो देश गुप्त राजाओं तथा हूणों के अधिकार में नहीं आए थे, उनको भी उसने अपने अधीन किया। ब्रह्मपुत्र नदी से महेन्द्रपर्वत (भारत के पूर्वी विभाग का पूर्वी घाट) और हिमालय से पश्चिमी समुद्र तट तक के स्वामियों को अपना सामन्त बनाया, और राजा मिहिरकुल ने भी, जिसने शम्भु के सिवा किसी के आगे सिर नहीं झुकाया था, उसके चरणों में अपना मस्तक नमाया अर्थात् उससे हारा।" यह लेख सन् ५३२ के समीप का है।

जिस राजा ने इतनी विजय की उसे शिलालेख में परमेश्वर और 'राजाधिराज' लिखा है। यशोधर्मन् ने इतने साम्राज्य का निर्माण करके साम्राज्य के भाव का नाश नहीं होने दिया और

इसी के चरण-चिह्नों पर चलते हुए एक सौ वर्ष पश्चात् हर्षवर्धन ने भी एक भारतीय साम्राज्य स्थापित किया।

मौखरी—जिस समय हूण जाति भारत भूमि पर उत्पात मचा रही थी और बालादित्य दूसरा उसे काश्मीर की ओर धकेल रहा था, उस समय थानेसर में एक वैश्य-कुल अपना बल बढ़ा रहा था। थानेसर का प्रदेश पुराने कुरु-जाङ्गल राज्य से बहुत कुछ मिलता जुलता है। प्रभाकरवर्धन = प्रतापशील इस कुल का तीसरा राजा था। वह सन् ६०५ में मर गया। उसके दो पुत्र थे—राज्यवर्धन और हर्षवर्धन। इनके अतिरिक्त राज्यश्री नाम की एक पुत्री थी। वह कन्नौज के राजा गृहवर्मा से ब्याही गई थी। उत्तर में हूणों के युद्ध से लौट कर सन् ६०५ में राज्यवर्धन थानेसर का राजा बना।

इसी काल में मालवा के राजा देवगुप्त ने गृहवर्मा को मार डाला और राज्यश्री को कैद कर लिया। राज्यवर्धन ने देवगुप्त के साथ युद्ध किया। देवगुप्त मारा गया और उसका बहुत-सा धन-धान्य राज्यवर्धन के हाथ लगा। अपनी बहन को छुड़ा कर जब राज्यवर्धन थानेसर की ओर लौट ही रहा था, कि बङ्गाल के राजा शशाङ्क ने उसे धोखे से मरवा दिया।

हर्षवर्धन—(सन् ६०६—६४७)—बड़े भाई राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् सन् ६०६ में हर्ष ने राज्य सँभाला। बंगाल के राजा शशाङ्क ने धोखे से उसके भाई को मरवा डाला था, इसलिए हर्ष ने उस पर आक्रमण कर दिया। शशांक पराजित हुआ। हर्षवर्धन अपनी बहन राज्यश्री को घर ले आया। राज्यश्री के कोई संतान न थी, अतः कन्नौज का प्रदेश हर्ष ने अपने राज्य में मिला लिया। इसी कन्नौज को उसने अपनी राजधानी बनाया और वह वहीं सुख-पूर्वक राज्य करता रहा।

इतिहास में हर्ष के श्रीहर्ष और शिलादित्य आदि नाम भी प्रसिद्ध हैं। हर्ष बड़ा वीर पुरुष था। वह शशाङ्क को हराकर ही सन्तुष्ट नहीं हुआ, उसने नर्मदा नदी तक सारे उत्तर भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। पूर्व में उसका राज्य आसाम की सीमा तक पहुँचा हुआ था। आसाम के राजा की उससे बड़ी मित्रता हो गई थी। ह्वानच्वाङ्ग लिखता है कि उसकी सेना में पचास सहस्र पदाति, बीस सहस्र अश्वारोही और पचास सहस्र हाथी थे। ऐतिहासिक लोगों का मत है कि पंजाब और राजपूताना के अतिरिक्त हर्ष के राज्य में सारा उत्तर भारत और सौराष्ट्र सम्मिलित था। सन् ६२० में हर्ष ने दक्षिण की ओर चढ़ाई की। वहाँ उसका युद्ध चालुक्य-वंशी पुलकेशी द्वितीय के साथ हुआ। इस युद्ध में हर्ष हार गया।

भट्ट बाण—संस्कृत का प्रसिद्ध कवि बाण हर्ष के दरबार की शोभा बढ़ाता था। हर्ष को विद्वानों से बहुत प्रेम था। बाण के सिवा और भी अनेक पण्डित उसके आश्रित होंगे। बाण कवि के दो संस्कृत ग्रन्थ रत्न अब भी मिलते हैं। एक है कादम्बरी और दूसरा हर्ष-चरित। कादम्बरी का गद्य अत्यन्त सुन्दर है और हर्षचरित तो हर्ष के जीवन पर बड़ा प्रकाश डालता है। हर्ष स्वयं भी विद्वान् था। एक शिलालेख पर बड़े सुन्दर अक्षरों में उसका हस्ताक्षर खुदा हुआ है।

हर्ष का धर्म—हर्ष बौद्ध-मतानुयायी था। उसने अनेक बौद्ध मन्दिर, स्तूप और विहार बनवाए। पर वह दूसरे धर्मों से द्वेष नहीं करता था। सब मतों के विद्वानों का उसके यहाँ यथोचित आदर होता था। वह हर पाँचवें वर्ष प्रयाग में एक बड़ा मेला करता था। उसमें लाखों नर नारी एकत्र होते थे और बहुत दान-पुण्य

होता था। जिस प्रकार प्राचीन राजा यज्ञों के अन्त में बहुधा अपनी सारी सम्पत्ति दान कर देते थे, इसी प्रकार प्रयाग के मेले में वह सारा निजी धन बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तथा अन्य निर्धन लोगों को दे दिया करता था।

ह्वानच्वाङ्ग या ह्यूनसांग की भारत-यात्रा—सन् ६३० में यह चीनी-यात्री भारत पहुँचा। वह यहाँ पन्द्रह वर्ष रहा। सन् ६४५ में वह चीन को लौट गया। उसने अपने भारत-भ्रमण का वृत्तान्त एक ग्रन्थ में लिखा है। हर्ष के राज्य के सम्बन्ध में वह लिखता है—

कन्नौज बड़ा शक्तिशाली नगर है। पाटलीपुत्र का नगर अपना पुराना ऐश्वर्य खो चुका है। हर्ष का राज्य-संचालन बहुत उत्तम है। राज्य का सारा काम हर्ष की देख रेख में होता है। चातुर्मास्य में भी राजा पूरा निरीक्षण करता रहता है। दण्ड-नियम कड़ा है। भयंकर अपराधों के बदले शरीर के अङ्ग काट दिये जाते हैं। भले पुरुषों को सत्कर्मों के लिए इनाम भी मिलते हैं। टैक्स बहुत कम हैं। सड़कों पर कहीं कहीं चोर और डाकू मिलते हैं, पर साधारणतया मार्ग सुरक्षित हैं❀। लोगों का घरेलू जीवन सरल और स्वच्छ है। मांस बहुत कम खाया जाता है। राजा ने मांस-भक्षण को रोक दिया है। इस आज्ञा को न मानने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता है। शिक्षा का बड़ा प्रचार है। कुलीन स्त्रियाँ भी शिक्षित हैं। वे परदा नहीं करतीं। विद्वान् और पंडित लोग राजाओं से भी अधिक पूजे जाते हैं। सती की प्रथा प्रचलित है। बाल-विवाह दिखाई नहीं देते। यात्रियों के लिए धर्मशालाएँ पर्याप्त हैं। किसान अपनी उपज का छठा भाग कर के रूप में देते हैं।

❀ ह्वानच्वाङ्ग को हर्ष के काल में फाहियान के काल ऐसी सड़कें नहीं मिलीं।

नालन्द का विश्वविद्यालय—हूणों के दमनशील राज्य के कारण तक्षशिला का विश्वविद्यालय निर्बलावस्था में आ गया था। अब नालन्द ही विद्वानों का जमघट स्थान था। नालन्द में ही ह्यूनसाँग ने शिक्षा पाई। उसका गुरु शीलभद्र उस समय अत्यन्त वृद्ध था। शीलभद्र वीतराग और उच्चकोटि का विद्वान् था। वह नालन्द का आचार्य था। उसका गुरु धर्मपाल युवावस्था में ही मर चुका था। एक बार जब हर्ष ने दरबार लगाया, तो शीलभद्र वहाँ निमन्त्रित किया गया। राजा हर्ष उस भिक्षु के सिर पर छत्र किए स्वयं नंगे पाँव चल रहा था। विद्वानों के प्रति इसी असीम श्रद्धा के कारण उस समय विद्या बहुत बढ़ रही थी।

हर्ष संवत्—भारतवर्ष में हर्ष-संवत् के नाम से एक संवत् चलता रहा है। वह संवत् इसी राजा हर्ष का संवत् था। इस संवत् का आरम्भ हर्ष के राज्याभिषेक के दिन से हुआ था। ३०० वर्ष तक यह संवत् मध्यभारत आदि में चलता रहा। कई शिलालेखों पर यही संवत् दिया हुआ है।

बौद्ध धर्म की अवनति—हर्ष का राज्य सातवीं शताब्दी के मध्य तक रहा। उसने बौद्ध धर्म को एक बार फिर जीवनदान दे दिया। उससे पूर्व पुष्यमित्र के काल से ले कर काण्वों, आन्ध्रों, भारशिवों और गुप्तों के काल में इस का ह्रास हो रहा था। हर्ष के इतना यत्न करने पर भी उस के कोई १०० वर्ष के पश्चात् बौद्ध धर्म बहुत क्षीण हो गया। लोगों में धर्म की स्वतन्त्रता अधिक हो गई थी। इस विषय में उदारता भी दिखाई देती थी। हर्ष का पिता सूर्योपासक था। उसके भाई बहन बौद्ध थे। वह स्वयं

बौद्ध होते हुए भी भगवान् बुद्ध के साथ शिव और सूर्य की उपासना करता था। कदाचित् अपने राज्य के सब मतों के साथ वह समान भाव दर्शाना चाहता था। फिर भी धर्म के प्रति बढ़ी हुई उदारता के कारण इस भूमि का स्थायी आर्य धर्म दूसरे धर्मों को शनैः शनैः हड़प रहा था। जिस प्रकार पुराने दिनों में उत्तर भारत में बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार होता रहता था, वैसा अब नहीं होता था। ब्राह्मणों का प्रभाव बढ़ रहा था और बौद्ध दबते जाते थे।

कुमारिल और शङ्कर—कुमारिल एक असाधारण विद्वान् था। उसकी प्रतिभा, उसका अगाध पाण्डित्य और उसकी वाक-पटुता बौद्धों को पछाड़ रही थी। कुमारिल उज्जयन में रहता था। वह और उसके शिष्य वैदिक धर्म के प्रचार में बहुत यत्न कर रहे थे। भट्ट कुमारिल के ग्रन्थ विद्वानों में आदर पाने लगे थे।

कुमारिल की मृत्यु के समय एक दाक्षिणात्य विद्वान् आचार्य शङ्कर और उठ पड़ा था। वह संन्यासी था। प्रतिभा में वह भी असाधारण था। कुमारिल के शिष्यों से उसने सहायता ली। उसके प्रचार ने भी बौद्ध धर्म को बहुत क्षति पहुँचाई। शङ्कर के वेदान्त-दर्शन भाष्य पर आज भी संसार के बड़े-बड़े विद्वान् मुग्ध हैं। कुमारिल, शङ्कर और उनके शिष्यों के धक्कों से बौद्ध धर्म का ह्रास आरम्भ हो गया।

जैन धर्म—जैन धर्म उस समय भी बड़े-बड़े विद्वान् उत्पन्न कर रहा था। उन्हीं दिनों अकलङ्क और पात्र केसरी ऐसे विजयी पण्डित जैन धर्म की रक्षा कर रहे थे। जैन धर्म पर शङ्कर आदि का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा।

हर्ष की मृत्यु—सन् ६४७ में हर्ष की मृत्यु हुई। उसके कोई पुत्र न था। उसके मन्त्री अरुणाश्व ने कन्नौज का सिंहासन अपने अधिकार में कर लिया। वह बहुत शक्ति-शाली न था, अतः राज्य-व्यवस्था स्थिर न रही। हूणों ने पुनः अपने आक्रमण आरम्भ कर दिए। भारत में अनेक छोटे छोटे राज्यों की उत्पत्ति होने लगी। विशाल साम्राज्य का विचार अब स्वप्न हो गया।

पंद्रहवाँ अध्याय

विशाल भारत

गत अध्यायों में हमने अफ़गानिस्तान का अनेक वार उल्लेख किया है। यह प्रदेश भारत का ही एक अङ्ग माना जाता था। पूर्व में भारतीय सीमा कहाँ तक थी, इसका अधिक वर्णन नहीं किया गया। कुछ वर्ष पहले, साधारण जन-समाज का ही नहीं, कई इतिहास-लेखकों का भी विचार था कि भारत की सीमा आसाम या वङ्गाल तक ही थी। अब यह विचार सर्वथा पलट गया है। कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा आदि अनेक द्वीपों से संस्कृत के शिलालेख मिले हैं। चीनी यात्री भी लिखते हैं कि इन द्वीपों में भारतीय राज्य ही था। गुजरात, मद्रास और बंगाल आदि से समय समय पर बहुत से लोग वहाँ गए। महाभारत आदि ग्रन्थों में भी इन द्वीपों को भारतीय ही माना गया है, अतः उनका संक्षिप्त इतिहास दिए विना, भारत-इतिहास का लिखना अधूरा ही रहता है। इन द्वीपों में अब भी कहीं कहीं हिन्दू धर्म का प्रचार है।

कम्बोडिया—बर्मा से परे यह एक बड़ा उपजाऊ देश था। ईसा की प्रथम शताब्दी से इसका इतिहास मिलना आरम्भ हुआ है। तब अनेक भारतीय वहाँ गए थे। यहाँ वर्षा के ठीक होने से उपज बहुत अच्छी होती थी। भूमि और जल-वायु भी अत्यधिक अनुकूल थे। इसकी राजधानी अंगकोर थी। अब यह प्रदेश फ्रेंच लोगों के अधिकार में हैं। उन्होंने ही यहाँ पर कई खुदाइयाँ की हैं। उन्हीं खुदाइयों के कारण इस स्थान का पुराना इतिहास स्पष्ट हो रहा है। अंगकोर के बड़े-बड़े पत्थरों के बिना चूना आदि के जोड़ से बनाए हुए विशाल मन्दिर सभ्य संसार का ध्यान अब भी अपनी ओर खींचते हैं। सातवीं, आठवीं और नौवीं शताब्दी में इस द्वीप की बड़ी उन्नति हुई। यहाँ के राजाओं ने आस पास के कई प्रदेशों को अपने राज्य में मिलाया। तेरहवीं शताब्दी में इन लोगों का पतन आरम्भ हुआ और अन्त में यह राज्य स्याम के अधीन हो गया। यहाँ के लोगों की कई रस्में अब भी ठीक हिन्दुओं की सी हैं।

चम्पा—यह बस्ती कम्बोडिया के उत्तर में थी। इसकी राजधानी अमरावती थी। इसका इतिहास भी पहली शताब्दी से मिलता है। इसके भी अनेक शिलालेख इस समय तक मिल चुके हैं। उनसे वहाँ की हिन्दू-संस्कृति का विशेष रूप से पता चलता है। पन्द्रहवीं शताब्दी से यहाँ पर इस्लाम ने अपने आक्रमण आरम्भ किए। उन्हीं के कारण पुराना राज्य नष्ट हो गया। अब इस प्रदेश में इस्लाम की प्रधानता है।

जावा और सुमात्रा—जावा का संस्कृत नाम यवद्वीप है। बहुत पुराने समय से आर्य लोग यहाँ बसते थे। बौद्ध धर्म के उत्कर्ष के समय वे बौद्ध हो गए। चीनी यात्री फ़ाहियान

अपने देश को लौटते समय यहाँ भी ठहरा था। उसने लिखा है कि यहाँ के लोग बहुत समृद्ध हैं और वे हिन्दू धर्म को मानते हैं। सातवीं शताब्दी से यहाँ शैलेन्द्र नाम के एक राजवंश का उदय हुआ। वह वंश बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया और उसने बौद्ध धर्म के प्रचार में बड़ा भाग लिया। शैलेन्द्र राजाओं ने यवद्वीप में अनेक मन्दिर और स्तूप बनवाए। उन में से बोरो-बदर नाम का स्तूप अपनी कारीगरी के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ है। इसकी कला के विषय में आश्चर्य किया जाता है। यह संसार के अत्यन्त सुन्दर और विशाल स्तूपों में से एक है। इन द्वीपों में इस समय मुसलमान ही बसते हैं। जावा आजकल डच लोगों के अधीन है।

सुमात्रा का प्राचीन संस्कृत नाम सुवर्णद्वीप है। सुवर्णद्वीप में श्रीविजय नाम का एक नगर था। एक चीनी यात्री लिखता है कि—"सुवर्णद्वीप के राजा के व्यापारिक जहाज़ भारत से इस द्वीप तक चलते हैं। यहाँ संस्कृत का बड़ा प्रचार है।" इन द्वीपों में बौद्ध धर्म के साथ साथ तन्त्र-मत का भी बड़ा प्रचार था।

बोर्नियो—यवद्वीप से उत्तर की ओर बोर्नियो एक स्वतन्त्र द्वीप है। यह भी विशालभारत का एक भाग रहा है। इन समुद्री द्वीपों में से यहीं के संस्कृत शिलालेख सबसे पुराने हैं। उनमें चौथी शताब्दी के समीप के एक बड़े शक्तिशाली राजा का वर्णन है। उसका नाम मूलवर्मा था। ये लोग यज्ञों को करने वाले पक्के हिन्दू थे।

लङ्का और बर्मा—यहाँ तो बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार रहा है और अब भी है। बौद्ध होने से पहले ये लोग आर्य ही थे। बर्मा चिरकाल से भारत का अङ्ग माना जाता रहा है। कई ऐतिहासिकों

का मत है कि पुराना देवलोक यही था। इन्द्रपुरी या अमरपुरी भी यहीं थी। इरावती नदी के तट पर स्थित अमरपुर नाम का नगर क्या उसी पुरानी इन्द्रपुरी का अवशेष है ?

खुतन—काश्मीर से परे खुतन या खोतान नाम का एक विस्तृत प्रदेश था। आजकल तो वह एक मरुभूमि हो गया है, परन्तु कभी वहाँ बड़े सुन्दर नगर थे। पिछले दिनों में वहाँ अनेक खुदाइयाँ हुई हैं। कई ग्रन्थ, आभूषण और सुन्दर वस्त्र वहाँ से मिले हैं। वहाँ पर बौद्ध धर्म कभी अपने पूरे यौवन पर था।

ये सब प्रदेश भारत के अन्तर्गत थे और इन सब पर विजय प्राप्त करनेवाला सम्राट् ही चक्रवर्ती होता था। कभी यहाँ के सब राजा लोग मान्धाता, सगर, रघु, भरत आदि चक्रवर्ती राजाओं के शासन में होते होंगे।

सोलहवाँ अध्याय

राजपूत वंशों की उत्पत्ति तथा मुसलमानों के प्रारम्भिक आक्रमण

हर्षवर्धन के देहान्त के पश्चात् भारत में कोई सुगठित एक राज्य नहीं बन सका और वर्धन वंश शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया। उस समय अनेक राजपूत-कुल स्वतन्त्र हो गए और उन्होंने अपने छोटे छोटे राज्य स्थापित कर लिए। राजपूत शब्द संस्कृत के राजपुत्र का अपभ्रंश है। कई ऐतिहासिकों का मत है कि राजपूतों के अनेक वंश भारतीय नहीं है, परन्तु यह बात ठीक नहीं है।

कन्नौज के प्रतिहार—हर्ष के पश्चात् कन्नौज की उन्नति नष्ट नहीं हुई। उसका ऐश्वर्य बना रहा। उसके विशाल भवन और बाज़ार अनेक लोगों को आकर्षित करते ही रहे। उसके राजा भारतीय राजाओं में बड़े मान्य थे।

सन् ७५० के समीप कन्नौज का राज्य रघुवंशी प्रतिहारों के हाथ में चला गया। उनका पहला राजा नागभट था। उसके वंश में चौथा राजा वत्सराज था।

वत्सराज—इस राजा की विजय गौड़ और बंगाल तक हुई। जब इसने मालवा के राजा पर चढ़ाई की तब मालवराज की सहायता के लिए राष्ट्रकूट ध्रुवराज आ गया। वहाँ इसे हार हुई और यह मरुदेश (मारवाड़) को लौट आया। यह राजा शैव था। इसी के राजकाल में सन् ७८३ में दिगम्बर जैन आचार्य जिनसेन ने हरिवंश पुराण लिखा।

भोज—(८४०—८९० ई०)-वह भगवती का उपासक था और अपने शिलालेखों पर वराह की मूर्ति खुदवाता था। इसने उत्तर कन्नौज को भी अपने राज्य में मिला लिया। इसका राज्य उत्तर भारत में दूर दूर तक फैल गया। गुजरात में इसके राज्य की सीमा जूनागढ़ तक थी। इसी वंश का पन्द्रहवाँ राजा जैपाल या राज्यपाल था। सन् १०१८ में महमूद गज़नवी ने उसी पर आक्रमण किया था।

गुर्जर—इस समय गुर्जर या गूजर लोग खेती या पशुपालन से अपना निर्वाह करते हैं, परन्तु पहले इनके कई बड़े राज्य थे। इन्हीं राजाओं के अधीन होने से सौराष्ट्र का पुराना देश गुजरात नाम से बोला जाने लगा। ईसा की सातवीं, आठवीं और नौवीं शताब्दियों में इनका अच्छा प्रभुत्व रहा। राजपूताना में

भीनमाल नाम का प्रसिद्ध नगर चिरकाल तक इनकी राजधानी बना रहा।

प्रतिहारों और गुर्जरों के समान बुन्देलखंड और मालवा आदि स्थानों में चंदेल, परमार आदि कई राजपूत वंश खड़े हो रहे थे। उत्तर भारत का भावी इतिहास इन्हीं राजपूतों का इतिहास है। इन्हीं राजपूतों से मुसलमान आक्रमण-कर्ताओं ने घोर युद्ध करके उनकी बढ़ी हुई शक्ति को धीरे धीरे नष्ट कर दिया।

इस्लाम मत का उदय

मुसलमान लोग इस्लाम या मुहम्मदी धर्म को मानते हैं। उनके धर्म के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद थे। उनका जन्म अरब के मक्का नामक नगर में सन् ५७० ई० में हुआ था। अरब में पहले शैवमत का बड़ा प्रचार रहा है। वहाँ के लोग मूर्तिपूजक और कई व्यसनों में पड़े हुए थे। हज़रत मुहम्मद ने उन्हें एक ईश्वरोपासना का उपदेश किया। जब वे उपदेश से न माने, तो मुहम्मद ने सन् ६२२ में मदीना जाकर तलवार का प्रयोग आरंभ किया। इस तरह उन्होंने अपनी रियासत बना ली। सन् ६२२ से ही हज़रत मुहम्मद के हिजरी सन् का आरंभ होता है। मुहम्मद की सेना बढ़ती गई और उसके साथ उनका उपदेश भी फैलता गया। सन् ६३२ में उनका शरीरान्त हुआ। उनके मत वालों ने अपना एक नेता चुना। उसे वे ख़लीफ़ा कहते थे। प्रत्येक ख़लीफ़ा की मृत्यु के पश्चात् एक नया ख़लीफ़ा अधिकारी हो जाता था। इस प्रकार ख़लीफ़ाओं का यह क्रम देर तक चलता रहा। इस ख़लीफ़ा की उपाधि को धारण करने के लिए सहधर्मी मुसलमानों में परस्पर के कई युद्ध हुए।

पारसियों का भारत आगमन—हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के २० वर्ष पश्चात् ही सीरिया, पैलेस्तान, मिश्र और ईरान पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। जो विधर्मी मुसलमान नहीं होता था, उसे मुसलमान सेना मार देती थी। इस प्रकार मुसलमानों का भय चारों ओर छाने लगा। उन्हीं दिनों ईरान के सैकड़ों पारसी-कुल अपने धर्म की रक्षा के लिए भारत के सूरत नामक नगर में और उसके आस-पास आकर बस गए।

सिन्ध पर मुसलमानों का आक्रमण—ख़लीफ़ा उमर का काल आरम्भ हुआ। उमान के हाकिम उस्मान ने समुद्री मार्ग से एक सेना मुम्बई की ओर भेजी। खलीफ़ा ने उस सेना को पीछे बुला लेने की आज्ञा दी। इसी अन्तर में उस्मान के भाई ने भड़ौच की ओर सेना भेजी। मार्ग में देवल (सिंध) के समीप चच (सिंध के राजा) ने उस से युद्ध किया। मुसलमान सेना परास्त हुई।

खलीफ़ा वलीद (सन् ७०५—७१४) के समय उसके एक सेनापति ने बलोचिस्तान के एक भाग को जीत कर बहुत से बलोचों को मुसलमान बनाया। अब मुसलमान भारत के बहुत समीप आ गए। चच का पुत्र दाहिर देवल (सिन्ध) का राजा था। इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए खलीफ़ा की आज्ञा से सन ७१२ में अरबों ने सिंध पर आक्रमण किया। खलीफ़ा का सेनापति मुहम्मद बिन कासिम था। दाहिर बड़ा शक्तिशाली था। इससे पहले एक बार वह मुसलमान सेना को हरा चुका था। उसके राज्य में बौद्ध अधिक रहते थे। वे हिन्दू राजा से द्वेष रखते थे। मत-वाद के कारण वे देशद्रोही बन गए। देवल के मार्ग में एक विशाल

मन्दिर था। मुहम्मद बिन कासिम ने मन्दिर को तोड़ दिया और १७ वर्ष से अधिक आयु के समस्त ब्राह्मणों को मार डाला, बालक तथा युवतियाँ कैद की गईं। केवल वृद्धा स्त्रियाँ छोड़ दी गईं। अब कासिम दाहिर के दुर्ग की ओर बढ़ा। दो देशद्रोही लोभी बौद्धों ने दुर्ग के गुप्त-मार्ग तथा रहस्य कासिम को बता दिए। जब राजा को विश्वास हो गया कि अब बाहर निकले बिना काम नहीं चलेगा, तो राजा ५०००० राजपूत, सिन्धी और मुसलमान योद्धाओं के साथ (जो उस की सेवा में आ चुके थे) आगे बढ़ा। मुसलमान अपने मोर्चों से न निकलते थे। राजा ने धावा बोल दिया। अरब पिछड़ रहे थे, इसी समय सहसा राजा को तीर आ लगा। उसने साहस नहीं त्यागा। वीर क्षत्रिय आगे बढ़ता गया और रणक्षेत्र में ही मर गया।

दाहिर की रानी वीर क्षत्राणी थी। अपने पति का आसन ग्रहण करके उसने युद्ध जारी रखा। अन्त में रानी की सेना के पास का अन्न समाप्त होने लगा। हिन्दू-स्त्रियों ने अन्तिम आग जलाई और चिताओं में प्रवेश करके जल गईं। अपने सैनिकों सहित रानी रणक्षेत्र में उतरी और वहीं वीरगति को प्राप्त हुई।

मुसलमानों ने सिन्ध से आगे राजपूताने की ओर बढ़ना चाहा, पर राजपूतों की वीरता के कारण वे उधर न बढ़ सके और कुछ काल के लिए सिन्ध में ही पड़े रहे।

सत्रहवाँ अध्याय

दक्षिण के राज्य

ऊपर और नीचे की दृष्टि से दक्षिण दो भागों में विभक्त हो गया था। नर्मदा के दक्षिण से तुङ्गभद्रा नदी तक ऊपर का और मालावार तक शेष प्रदेश नीचे का भाग था। हर्ष के पश्चात् भारतीय साम्राज्य के नष्ट होते ही दक्षिण के दोनों भागों के अनेक राजा स्वतन्त्र हो गए। उन्होंने अपने अपने राज्यों को दृढ़ भी बना लिया। उन में से ऊपर के दक्षिण के कुछ एक प्रधान राज्य निम्नलिखित थे—

चालुक्य राज्य—आधुनिक बीजापुर ज़िले में वातापि (= वादामि) नामक एक नगर था। सन् ५५० के समीप वह एक राजपूत-वंश के अधिकार में चला गया। इस वंश का आदि पुरुष पुलकेशी प्रथम था। पुलकेशी ने कई युद्धों में विजय प्राप्त की और अश्वमेध यज्ञ किया। उसका पौत्र पुलकेशी दूसरा (सन् ६०८—६४२) बड़ा पराक्रमी था। इसी पुलकेशी ने हर्षवर्धन को दक्षिण की ओर बढ़ने से रोक दिया था। वह क्षत्रिय स्वयं वीर था और एक वीर सेना रखता था, पर था कुछ अभिमानी। उसने अपने राज्य में विद्या की बड़ी उन्नति की। उसी के काल में पल्लव-वंश भी बड़ी उन्नति कर रहा था। उनका केन्द्र काञ्ची था। सन् ६४२ में पल्लव राजा ने पुलकेशी को हराकर उसका राज्य ले लिया। कुछ काल पश्चात् चालुक्य पुनः शक्तिशाली बने और उन्होंने अपना राज्य फिर प्राप्त कर लिया।

राष्ट्रकूट वंश—सन् ७५७ के समीप यह वंश उठने लगा। इनके राजा अमोघवर्ष ने बड़ी उन्नति की । वह जैन था । उसने जैन धर्म का अच्छा प्रचार कराया । सन् ६७३ में राष्ट्रकूट हार गए और कल्याणी में भी चालुक्यों की एक शाखा राज्य, करने लगी। इस शाखा का सबसे प्रसिद्ध राजा विक्रमाङ्क था। इस राजा का चरित संस्कृत में मिलता है।

यादव वंश—यादववंश के राजा पहले चालुक्यों और राष्ट्रकूटों के सामन्त मात्र थे। फिर इन्होंने धीरे-धीरे बड़ी उन्नति की। सन् ११००—१२०० तक इन्होंने संस्कृत की उन्नति के लिए बड़ा यत्न किया। इनका केन्द्र देवगिरि में था।

नीचे के दक्षिण में भी कई शक्तिशाली राज्य स्थापित हुए। उन का वृत्त आगे दिया जाता है।

पाण्ड्य राज्य—यह राज्य बहुत पुराने काल से चला आता था। महाभारत में लिखा है कि भारत-युद्ध में पाण्ड्य राजा उपस्थित था। नहीं कह सकते कि महाभारत का यह पाण्ड्य कितना पुराना है, पर यह राज्य था अच्छा प्राचीन । ईसा की पहली और दूसरी शताब्दियों में पाण्ड्य राज्य के लोग रोम तक व्यापार करते थे । ह्वानच्वाङ्ग भी लिखता है कि इस राज्य के लोग बड़े चतुर व्यापारी हैं। मोतियों का व्यापार तो अधिकता से यहीं होता था। यहाँ का राजा सुन्दर पाण्ड्य प्रथम बड़ा विद्वान् था। उसने वेदान्त और मीमांसा के ग्रन्थ लिखे। ईसा की दशम शताब्दी में चोल महाराज ने इस राज्य को जीत लिया। दो सौ वर्ष तक यह राज्य चोलों के ही अधीन रहा । तेरहवीं शताब्दी में जातवर्मन सुन्दर (दूसरा) एक बड़ा बलवान् राजा हुआ। उस ने नीलोर से अन्तरीप कुमारी तक का प्रदेश अपने अधीन कर लिया।

चोल राज्य—इस देश का पुराना नाम चोलमण्डल था। कारोमण्डल इसी का अपभ्रंश रूप है। पांड्य लोगों के सदृश चोल लोग भी अरब के मार्ग से पश्चिमी देशों के साथ व्यापार करते थे। इनके बड़े बड़े जहाज़ थे, जो समुद्रों में दूर दूर तक जाते थे। मिश्र तक के व्यापार पर इन लोगों ने अधिकार कर रखा था। इस वंश के महाराज राजरज (सन् ९८५—१०१२) ने लङ्का, मैसूर और मद्रास तक का देश जीता था। इस का साम्राज्य अच्छा विस्तृत था। इस वंश के किसी वीर राजा के राज्य में रहकर ही आचार्य वेङ्कट माधव ने लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में अपना ऋग्वेद का प्रसिद्ध भाष्य रचा था। ये राजा शिव भक्त थे। राजरज चोल का पुत्र राजेन्द्र चोल था। उस ने लगभग सन् १०३५ तक राज्य किया। वह भी एक वीर योद्धा था। अपने देश की खेती की उन्नति के लिए उसने एक विशाल झील बनवाई। वह अपनी प्रजा को बहुत सुख देता था। पांड्य और चोल राज्यों में सदा युद्ध होते रहते थे। इन युद्धों से दोनों राज्य बहुत क्षीण हो गए और अन्त में १३१० ई० में मलिक काफूर ने इन दोनों राज्यों को नष्ट कर दिया।

पल्लव वंश—पल्लवों का इतिहास अभी अभी लिखा गया है। कभी इस वंश का बड़ा ऐश्वर्य था। इनकी राजधानी काञ्ची थी। ह्वानच्वाङ्ग काञ्ची गया था। वह लिखता है कि बौद्ध भिक्षु दश सहस्र की संख्या में इस नगर के विहारों में रहते हैं। पल्लव राजा भी चालुक्यों से युद्ध करते रहे और अन्त में चोलों के अधीन हो गए। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में इस वंश का उच्छेद हो गया।

रामानुज—तीसरी चौथी शताब्दी से इस नीचे के दक्षिण में

बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार हुआ। पाँचवीं शताब्दी से जैनों ने भी अपना बड़ा प्रचार किया। सातवीं शताब्दी के अन्त में शङ्कराचार्य ने बौद्धों को बहुत कुछ निर्बल किया। उस समय धर्मकीर्ति ऐसे असाधारण बौद्ध विद्वान् दक्षिण में ही हुए थे। दसवीं शताब्दी के अन्त में वैष्णव आचार्य रामानुज ने दक्षिण के अनेक भागों में बौद्ध और जैन दोनों को ही अपना शिष्य बना लिया। उस समय से बौद्ध तो लुप्त हो गए पर जैन कहीं कहीं बने रहे।

अठारहवाँ अध्याय

दासता के द्वार पर

सिन्ध में मुसलमान आ चुके थे। वे आगे नहीं बढ़ सके। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत पर मुसलमानों के भयङ्कर आक्रमण आरम्भ हुए। इन आक्रमणों में वे सफल हुए। इतिहास का पाठ करते हुए उनकी सफलता के कारणों का जानना नितान्त आवश्यक है। वह ऐसा काल था जब आर्य संस्कृति अपना सौंदर्य खो चुकी थी, जब हिन्दू धर्म अपने गौरव को भूल रहा था और जब क्षात्र धर्म बहुत क्षीण हो गया था। इन सब बातों के कारण नीचे दिए जाते हैं—

१. साम्राज्य या एक केन्द्र-शक्ति का अभाव—पुराने भारत में वीर क्षत्रियों के अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, परन्तु उन में एक न एक चक्रवर्त्ती राजा होता ही रहा। मान्धाता, मरुत्त, सगर, रघु, राम, भरत आदि अनेक चक्रवर्त्ती राजा हुए। उन दिनों यदि कभी आवश्यकता पड़ती थी तो चक्रवर्त्ती राजा की आज्ञा से

शेष सब राजा एकत्र हो जाते थे। उन दिनों अन्य देशों में भी बड़े-बड़े स्थायी साम्राज्य न थे, अतः भारत सुख में रहा। भारत-युद्ध के समय भी बड़े-बड़े क्षत्रिय राजा दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष के होकर उस घरेलू युद्ध में लड़े। उसके पश्चात् इतिहास में नन्दों का साम्राज्य प्रसिद्ध है। इसी साम्राज्य के भय से सिकन्दर सदृश विजेता भी भारत से हताश ही लौटा। नन्दों के पश्चात् मौर्य, शुङ्ग, सातवाहन, भारशिव और गुप्त वंश के सम्राटों ने भारत में विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य स्थिर रखे। इन्हीं साम्राज्यों के अतुल बल के कारण विदेशी लोग बार-बार यत्न करने पर भी चिरकाल तक पंजाब में भी नहीं ठहर सके। हर्षवर्धन तक यह परम्परा चलती गई। हर्ष के पश्चात् साम्राज्य का विचार ढीला पड़ने लगा। आठवीं, नौवीं और दसवीं शताब्दी में यह विचार सर्वथा क्षीण हो गया। दसवीं शताब्दी के अन्त में साम्राज्य के इसी अभाव के कारण विदेशी यहाँ पर सफल हुए।

२. घरेलू युद्ध और मित्र-शक्तियों का अभाव—अनेक छोटे-छोटे राज्यों के स्थापित हो जाने से घरेलू युद्ध बहुत बढ़ गए थे। पिछले अध्याय में दिखाया गया है, कि दक्षिण के राज्य किस प्रकार परस्पर लड़ लड़ कर क्षीण हुए। वैसा ही आपस का झगड़ा सारे भारत में विद्यमान था। जब महमूद ग़ज़नवी का आक्रमण हुआ तो लाहौर के राजा को दो ही चार अन्य राजाओं ने सहायता दी। दूरवर्ती बिहार, बंगाल और दक्षिण के राजा आनन्द से अपने घर बैठे रहे। सिकन्दर जब भारत में आया तो आते ही उसने आम्भी आदि कई राजाओं को अपना मित्र बना लिया। बिना मित्र-शक्तियों के बड़े युद्ध नहीं लड़े जाते। सिकन्दर इस रहस्य को जानता था। परन्तु

दसवीं शताब्दी के हिन्दू राजा राजनीति के इस तत्व को भूल गए थे।

३. राजनीति का अभाव—भगवान् कृष्ण की अपार नीति के बल से ही थोड़ी सेना वाले पाण्डवों ने दुर्योधन की महती शक्ति का संहार किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य का महामन्त्री प्रसिद्ध अर्थशास्त्र का रचयिता था। उन दिनों राजनीति का अध्ययन राजाओं का परम कर्तव्य था। वह नीति का केवल अध्ययन ही न करते थे, प्रत्युत, इसे प्रयोग में भी लाते थे। आठवीं और नवीं शताब्दी से इस शास्त्र के अध्ययन का ह्रास होने लग पड़ा। उस समय के समूचे भारत में इस शास्त्र का क्रियात्मक रूप से जानने वाला कोई भी दिखाई नहीं देता। गुप्तचरों का यद्यपि सर्वथा नहीं, पर कुछ कुछ अभाव होता जाता था। इसी कारण बाहर के शत्रु आक्रमण करने वालों की पूरी तय्यारी जाने बिना अनेक राजाओं ने उनसे युद्ध किये और हार गये।

४. हिन्दू दूसरे की सीमा में जाकर युद्ध नहीं करता रहा—रघु काश्मीर से परे चला गया था। दाशरथि राम लङ्का तक पहुँचा था। पांडव नकुल ने कैस्पियन सागर तक विजय की थी। मौर्य राज्य की सीमा ही अफ़ग़ानिस्तान से परे जा पहुँची थी। पर दसवीं शताब्दी का हिन्दू अपने घर में ही लड़ता था। महमूद ग़ज़नी से चलता था और हिन्दू राजा घर बैठे उसकी प्रतीक्षा करते थे कि कब वह आवे और कब उससे युद्ध हो। इस आलस्य और भय के कारण वे कभी पूरा मुकाबिला नहीं कर सके।

५. बौद्ध प्रभाव—बौद्ध प्रभाव के कारण प्रजा बड़ी दुर्बल हो गई थी। नष्ट होते हुए बौद्ध धर्म ने भी अकर्मण्यता दायाद में

भारत को दे दी। दाहिर का पराजय देश-घातक दो बौद्धों के कारण हुआ।

इस प्रकार की और भी अनेक बातें हैं जो इतिहास का पाठ करते करते अनायास सामने आती हैं। दसवीं शताब्दी का हिन्दू भारत भी मत-वाद के झगड़ों में फँस चुका था। एक मत वाला दूसरे से द्वेष कर रहा था। इस द्वेष के कारण साँझी आपत्ति के समय में भी वह अपने देश भाई के साथ खड़ा नहीं हो सका। वह दूर खड़ा तमाशा देखता रहा। ऐसी अवस्था थी, जब भारत दासता के द्वार पर आ खड़ा हुआ और भारत में उस दुःख का सूत्र-पात हुआ जो दूर होने में न आया।

उन्नीसवाँ अध्याय

हिंदू-साहित्य का दिग्दर्शन

भारतीय इतिहास में हिंदू-काल का ऐश्वर्य समाप्त हो गया। एक-एक करके हिन्दू राजा अपनी स्वतन्त्र सत्ता खोने लगे। साहित्य की उन्नति राजाओं के आश्रय से ही होती है। साहित्य है भी जाति का प्राण। अतः हिन्दू-काल की समाप्ति पर हिन्दू-साहित्य का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

आयुर्वेद—वैदिक काल से ही आयुर्वेद की उन्नति आरम्भ हो गई थी। आयुर्वेद की मूल संहिताएँ तीस से भी अधिक थीं। चरक, सुश्रुत, भेल आदि संहिताएँ अब भी मिलती हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है कि पुराने वैद्य कटे हुए सिर को भी जोड़ देते थे। उनके यन्त्र इतने सूक्ष्म थे कि वे बाल को सीधा कई भागों में काट देते थे। भारत से ही चिकित्सा-शास्त्र अरब में गया।

ज्योतिष—राशि और नक्षत्रों का ज्ञान, सूर्य और भूमि के घूमने का ज्ञान आर्यों को वैदिक काल से ही था। सूर्य का डूबना गति के कारण ही है, ऐसा ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है। आने वाले सूर्य-ग्रहण और चन्द्र ग्रहण को आर्य लोग बहुत शीघ्र जान लेते थे।

आर्य भट (पाँचवीं शताब्दी), वराहमिहिर (छठी शताब्दी) और भास्कराचार्य (बारहवीं शताब्दी) आदि विद्वान इस शास्त्र के उच्चकोटि के पंडित हुए हैं।

गणित—गणित के अनेक विभागों में आर्यों की उन्नति बहुत पहले हो चुकी थी। एक जर्मन विद्वान् ने लिखा है कि पायथैगोरस से कई सौ वर्ष पहले आर्य जानते थे कि समकोण त्रिभुज की लम्बी भुजा (कर्ण) का वर्ग शेष दोनों भुजाओं के वर्गों के योग के तुल्य होता है। आर्य लोग अपने यज्ञों में ज्योमेट्री की सहायता से अनेक काम करते थे।

अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र का वर्णन पहले आ चुका है। यह विद्या भारत में बहुत उन्नत थी। कौटल्य के अर्थ-शास्त्र से पूर्व भी अनेक आचार्यों ने इस विषय पर अपने ग्रन्थ लिखे थे।

दर्शन शास्त्र—दर्शन शास्त्र गिनती में छः हैं। गौतम का न्याय-शास्त्र, कणाद का वैशेषिक-शास्त्र, कपिल का सांख्य-शास्त्र, पतञ्जलि का योग-शास्त्र, जैमिनि का मीमांसा-शास्त्र और व्यास का वेदान्त शास्त्र। ये शास्त्र समय समय पर बने थे। कपिल का मूल सांख्य शास्त्र बहुत पुराना था। इन्हीं दर्शनों के तर्क-बल पर आर्य विद्वान् बौद्धों और जैनों से शास्त्रार्थ करते थे। बौद्धों और जैनों के तर्क शास्त्र बड़े उन्नत थे। यह तर्क-युद्ध भारत में कई शताब्दियों तक रहा। छः शास्त्रों पर कई भाष्य और टीकाएँ रची गईं।

इन ग्रन्थों को पढ़कर आज भी बड़े बड़े विद्वान् आश्चर्यान्वित हो जाते हैं।

स्मृति-ग्रन्थ—वैदिक काल के अन्त में ही आधुनिक धर्म-शास्त्र रचे गए थे। परन्तु उनके कई रूपान्तर पीछे से होते गए। उनके आधार पर कई नये श्लोक-बद्ध स्मृति-ग्रन्थ बने। मनुस्मृति पहले से ही श्लोकों में है, पर इस में अनेक प्रक्षेप हुए हैं और कई श्लोक निकल भी गए हैं।

कला-कौशल—अब तो कला-कौशल के भी अनेक पुराने ग्रन्थ मिलने लग पड़े हैं। मूर्ति-कला, वास्तु-कला और शिल्प की दूसरी शाखाओं पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए थे।

नाटक—बहुत पुराने काल से भारत में नाटक खेले और रचे जाते थे। शुङ्ग पुष्यमित्र का पुरोहित पतञ्जलि अपने महाभाष्य में लिखता है कि नाटक खेलने वाले कंस-वध का नाटक दिखाते हैं। अश्वघोष, कालिदास और भवभूति की रचनाएँ संसार-प्रसिद्ध हो गई हैं।

कथा, कहानी—कथा कहानी के ग्रन्थों का विस्तार भारत से ही हुआ है। तन्त्राख्यायिका के कई रूप यहाँ बने। पंचतन्त्र और हितोपदेश उसी के रूपान्तर हैं। पाँचवीं सदी में इन कथाओं का अनुवाद सीरिया की भाषा में हो गया था। कथा-सरित्सागर भी कथाओं का एक स्रोत है। इस का मूल गुणाढ्य का ग्रन्थ था, जो अब नष्ट हो चुका है।

शिक्षा—आर्यावर्त में शिक्षा का बड़ा प्रचार रहा है। उपनिषद् काल का एक राजा कहता है—"मेरे देश में एक भी अविद्वान् नहीं है।" गुरुकुलों का प्रचार अत्यधिक था। उन्हीं गुरुकुलों और ऋषियों के आश्रमों में विद्यार्थी लोग पढ़ते थे। ब्राह्मण भी

अपनी-अपनी पाठशालाओं में पढ़ाया करते थे। सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ विष्णुगुप्त अपनी सीधी-सादी कुटिया में अपने विद्यार्थियों को पढ़ाया करता था। शिक्षा बिना फीस के थी। शिष्य-मण्डल अध्यापकों का परमादर करता था।

विश्व-विद्यालय—बौद्ध काल में कई बड़े-बड़े प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे। तक्षशिला, नालन्दा और विक्रमपुरी में शिक्षा का बड़ा अच्छा प्रबन्ध था। संसार-प्रसिद्ध आचार्य यहाँ पढ़ाते थे। उन आचार्यों की प्रतिष्ठा देश-व्यापी थी। राजा और धनाढ्य लोगों ने इन विद्यालयों के साथ धर्मार्थ कोष और भूमियाँ जोड़ी हुई थीं। उन्हीं की आय से यहाँ के सब खर्च चलते थे। ह्वानच्वाङ्ग के गुरु शीलभद्र का नाम पहले लिखा जा चुका है। वह नालन्दा का आचार्य था। राजा हर्ष ने एक बड़ी भेंट उसकी सेवा में भेजी थी। आचार्य ने वह स्वीकार न की। फिर मन्त्री स्वयं चल कर गया। उसने कहा कि यह आप की भेंट नहीं है। यदि राजागण विद्या का मान न करेंगे, तो विद्वान् कम हो जायँगे, अतः विद्या की परम्परा को स्थिर रखने के लिए ही यह भेंट की गई है। आप इसे अवश्य ले लें। इस बात को सुन कर आचार्य ने भेंट ले ली और कहा इस के व्यय से धर्म का कार्य होता रहेगा। अपने लिए उस ने एक पाई भी न रखी। निस्पृहता का यह उज्ज्वल आदर्श भारतवर्ष ही उपस्थित कर सका है।

इन विद्यापीठों में पुस्तकों का एक विशाल भण्डार उपस्थित रहता था। सन् ११६७ में बिहार लेने के पश्चात् बख्तियार खिलज़ी ने नालन्दा के विद्यापीठ की सहस्रों पुस्तकें जलवा दी थीं।

बौद्ध-काल में भी ब्राह्मण लोग अपनी शिक्षा देते रहते थे। राजा लोगों के दरबारों में बड़े-बड़े विद्वान् रहते थे।

इस सब साहित्य और शिक्षा के होते हुए भी राजनीतिक निर्बलता के कारण हिन्दू दासता के ग्रास में चले गए।

बीसवाँ अध्याय

ग़ज़नी के सुलतानों के आक्रमण

अरबों का उत्कर्ष और पतन—अरब लोगों ने एक ओर जहाँ सिन्ध को विजय किया, वहाँ दूसरी ओर योरुप में उन्होंने स्पेन तक अपना साम्राज्य फैलाया। स्पेन की बड़ी-बड़ी मसजिदें आज भी वास्तुकला का एक अच्छा नमूना हैं। अरबों का यह साम्राज्य देर तक नहीं रह सका। एक ही शताब्दी में उस में निर्बलता आ गई। अरब स्वभाव से ही विलास-प्रिय थे। इतने भारी साम्राज्य को बना कर वे ऐश्वर्य को सह नहीं सके। भोग-विलास में पड़ कर उन्होंने अपनी सारी शक्ति का नाश कर दिया।

तुर्कों का उदय—तुर्कों का मूल-स्थान मध्य एशिया था। वे पहले जंगली ही थे। अरबों के संसर्ग से वे कुछ सभ्य हुए और उन्होंने उन्नति करने की ठानी। समरकन्द और बुखारा में एक स्वतन्त्र मुसलमान राज्य स्थापित हो चुका था। वहाँ का अमीर अबुलमलिक था। उसने तुर्क अलप्तगीन को खुरासान का नायब बनाया। अबुलमलिक की मृत्यु पर अलप्तगीन ही ग़ज़नी का स्वतन्त्र सुलतान बन बैठा। अलप्तगीन के पश्चात् उसके पुत्र इसहाक ने ग़ज़नी का राज्य सँभाला। अलप्तगीन का एक तुर्की

गुलाम था। उसका नाम था सुबुक्तगीन। वह इसहाक का नायब बना। इसहाक की मृत्यु के पश्चात् सन् ९७७ में सुबुक्तगीन गज़नी का सुलतान बना।

सुबुक्तगीन का भारत पर आक्रमण—जयपाल से युद्ध— सन् ९७७ में सुलतान सुबुक्तगीन ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय लाहौर में भीमपाल का पुत्र जयपाल राज्य करता था। सरहिन्द से लमग़ान तक और मुलतान से काश्मीर तक जयपाल के राज्य का विस्तार था। महमूद सुबुक्तगीन का पुत्र था। इस आक्रमण में वह अपने पिता के साथ था। लाहौर का राजा भटिण्डा के दुर्ग में रहता था। कुछ देर तक तो राजा अच्छा मुकाबला करता रहा, पर जब उसने देखा कि उसकी सेना की स्थिति अच्छी नहीं, तब उसने सन्धि का प्रस्ताव किया। महमूद सन्धि के विरुद्ध था, परन्तु पिता ने सन्धि कर ली। राजा जयपाल सन्धि की शर्त के अनुसार सुलतान को देने के लिए धन एकत्र करने लाहौर आया। वहाँ ब्राह्मणों ने उसे सन्धि का उल्लङ्घन करने की प्रेरणा की। क्षत्रिय इसके विरुद्ध थे। राजा ने सन्धि तोड़ दी। यह समाचार सुनते ही सुलतान फिर गज़नी से निकला।

जयपाल युद्ध के लिए तय्यार हुआ। उसने दिल्ली, कन्नौज और कालिंजर के राजाओं को भी अपनी सहायता के लिए बुलाया। यत्न करने पर भी जयपाल की पराजय हुई। उसकी भागती हुई सेना का मुसलमानों ने सिन्ध नदी तक पीछा किया। लूट का बहुत सा माल मुसलमानों के हाथ लगा। सुबुक्तगीन ने सिन्धु नदी तक के प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। पेशावर में अपना एक प्रतिनिधि छोड़कर सुलतान ग़ज़नी को लौट गया।

सुलतान महमूद—पिता की मृत्यु के पश्चात् महमूद ग़ज़नी के राजसिंहासन पर बैठा। उसने सारे अफ़ग़ानिस्तान पर अपना प्रभुत्व जमाया। मध्य एशिया के सारे मुसलमानी राज्य उससे मैत्री करना चाहते थे। महमूद जान गया था कि भारत के राजा परस्पर लड़ते झगड़ते रहते हैं। उसे भारत के अथाह धन का भी पता लग चुका था। ग़ज़नी के साम्राज्य को मालामाल करने के लिए उसने उत्तर भारत पर १७ आक्रमण किए।

जयपाल का दूसरा युद्ध—सुलतान सुबुक्तगीन के चले जाने के पश्चात् राजा जयपाल फिर स्वतन्त्र होगया था। सन् १००१ में महमूद ने उस पर आक्रमण किया। राजा ३० सहस्र पदाति, १२ सहस्र अश्वारोही और ३०० हाथी लेकर पेशावर के पास उससे आ भिड़ा। दैव राजा के प्रतिकूल था। महमूद की विजय हुई। लूट का अगणित माल महमूद के हाथ आया। उस लूट के माल में १६ रत्नजटित कंठे भी थे। उनमें से एक का मूल्य जौहरियों ने १८००० सुवर्ण दीनार बताया। राजा जयपाल दो बार हार चुका था। अतः वह जीवन से निराश हो अग्नि में जल कर मर गया।

आनन्दपाल—जयपाल के पश्चात् लाहौर के राजसिंहासन पर आनन्दपाल बैठा। सन् १००६ में सुलतान महमूद ने उस पर चढ़ाई की। आनन्दपाल ने उज्जैन, ग्वालियर, कालिञ्जर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजाओं की सहायता प्राप्त की। आनन्दपाल पेशावर पहुँचा। पेशावर के पास ४० दिन तक दोनों सेनाएँ एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं। युद्ध आरम्भ नहीं होता था। हिन्दू सेना बढ़ती जाती थी। दूर दूर से हिन्दू महिलाओं ने अपने आभूषण बेचकर युद्ध के खर्च के लिए धन भेजा। सुलतान ने ६००० धनुषधारी आगे किए। दूसरी ओर से गक्खर उनके सम्मुख हुए। वे ऐसी

वीरता से लड़े कि मुसलमानों का साहस टूट गया। गक्खरों ने ५००० मुसलमान क्षण भर में काट गिराए। जब आनन्दपाल की विजय निश्चित थी, तब एक गोला लगने से उसका हाथी (भाग खड़ा हुआ) हिन्दू सेना हताश हो गई। उन्होंने समझा कि राजा ने पीठ दिखा दी है। सेना भी भाग निकली। जीता हुआ रणक्षेत्र हारा गया। महमूद को लूट में बहुत सी सामग्री मिली। लगभग २० सहस्र हिंदू मारे गए।

अब महमूद का साहस बहुत बढ़ गया। हिंदुओं की थोड़ी सी सैनिक भूल के कारण विजय उसकी रही और वह उन की सम्मिलित शक्ति को परास्त कर सका। महमूद धन के विचार से ही आक्रमण करता था। अतः उसने वे सब स्थान दृष्टिगत कर लिए जहाँ से कि वह धन ले सके।

नगरकोट पर आक्रमण—नगरकोट काङ्गड़े की पहाड़ियों में एक दुर्ग था। यह हिंदुओं का तीर्थ-स्थान था। महमूद ने सुना कि काँगड़े के मंदिर में असीम धन है। वह अपनी सेना सहित उधर बढ़ा। उसकी सेना ने काँगड़े के समीप का सारा प्रदेश उजाड़ दिया और दुर्ग को घेर लिया। राजा ने कुछ देर तो युद्ध की तैयारी की, पर अंत में महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली। वहाँ से जवाहरात और चाँदी के ढेर के ढेर महमूद, ग़ज़नी को ले गया।

मथुरा और कन्नौज—मथुरा को महमूद ने शीघ्र ही ले लिया। उसके पश्चात् वह कन्नौज की ओर बढ़ा। सन् १०१८ में वह कन्नौज पहुँचा। राज्यपाल प्रतिहार उस समय कन्नौज की गद्दी पर था। राजा पर यह आक्रमण सहसा हुआ था। वह तैयारी न कर सका। घबरा कर वह गङ्गा पार चला गया।

सुलतान ने वहाँ के सात दुर्ग नष्ट कर दिए और अनेक लोगों को खड्ग के घाट उतारा। कन्नौज बुरी तरह से लूटा गया। हर्षवर्धन की राजधानी कन्नौज अब अपना ऐश्वर्य खोने लगी।

सोमनाथ पर आक्रमण—महमूद का सोलहवाँ आक्रमण सोमनाथ पर हुआ। वहाँ एक विशाल मन्दिर था। सोमनाथ की स्थिति गुजरात में समुद्र तट पर थी। इस आक्रमण का काल सन् १०२५ है। तीस सहस्र सवारों के साथ महमूद ने ग़ज़नी से प्रस्थान किया। पहले वह मुलतान पहुँचा। वहाँ से मरुभूमि में से होता हुआ वह अन्हिलवाड़े पहुँचा। अन्हिलवाड़े से वह आगे बढ़ा। मार्ग में उसने बहुत से लोगों को मारा। वहाँ से चलकर वह देवलवाड़े पहुँचा। यहाँ से सोमनाथ दो पड़ाव दूर था। वहाँ के लोगों का विश्वास था कि सोमनाथ का देवता शत्रु को भगा देगा। वे लोग इसी विश्वास के कारण नगर से भागे नहीं। महमूद ने नगर विजय करके लोगों को कत्ल किया और उनका माल लूट कर वह सोमनाथ की ओर बढ़ा।

बृहस्पति वार को वह सोमनाथ पहुँचा। उसने समुद्र तट पर एक सुदृढ़ दुर्ग देखा। समुद्र की लहरें दुर्ग की दीवारों से टकराती थीं। पहले हिंदू लोग दुर्ग की दीवारों पर चढ़ कर हँसते थे। वे कहते थे कि देवता सब शत्रुओं को नष्ट कर देगा। शुक्रवार को सुलतान आक्रमण के लिए आगे बढ़ा। जब वह दुर्ग के बिलकुल पास पहुँच गया और देवता ने उसे रोकने का कुछ उपाय न किया तो हिंदू निराश हो गये। फिर भी वे एक बार अपनी पूरी शक्ति से लड़े। महमूद कुछ उदास हो गया। उस को भविष्य संदेह-युक्त दीखने लगा।

दूसरे दिन महमूद ने अधिक उत्साह के साथ युद्ध आरम्भ

किया। मन्दिर की रक्षा करने वाले बार-बार देवता के सामने जा कर रोते थे और प्रार्थना करते थे। फिर वह युद्ध के लिए डट जाते थे। इस प्रकार वे प्राणान्त तक लड़ते रहे। अंत में जो थोड़े से बचे, वे नावों द्वारा समुद्र में चले गये। मुसलमानों ने समुद्र में जाकर भी उन्हें मारा।

सोमनाथ के मंदिर में सीसे से मढ़े हुए सागवान के ५६ स्तम्भ थे। मूर्ति एक अँधेरे कमरे में थी। मूर्ति पाँच हाथ ऊँची थी। इतनी भूमि के बाहर और दो हाथ भूमि के अंदर थी। महमूद ने उस का एक भाग जलवा दिया और दूसरा भाग वह ग़ज़नी ले गया। उस से उसने वहाँ जामा मसजिद के द्वार की एक सीढ़ी बनवाई। मूर्ति के कमरे में रत्नजटित दीपकों का प्रकाश रहता था। मूर्ति के समीप सोने के बीसियों पदार्थ थे। इस मंदिर से २० लाख दीनार से अधिक का माल महमूद के हाथ लगा। पचास सहस्र से अधिक हिंदू वहाँ मारे गए।

महमूद की मृत्यु और उस के पश्चात्—सन् १०३० में ग़ज़नी में महमूद का देहान्त हुआ। उस के पुत्र-पौत्र परस्पर लड़ भिड़ कर शक्ति-हीन होते गये। अन्य देशों को विजय करने की शक्ति उनमें नहीं थी। वे तो अपने राज्य की रक्षा में भी असमर्थ हो गए। अथाह धनराशि उन की सब शक्तियों को क्षीण करने के लिए पर्याप्त थी।

महमूद का चरित्र—महमूद पक्का मुसलमान था। वह शूर-वीर भी था। उसे राज्य बढ़ाने की इतनी लालसा न थी जितनी धन-संचय करने की। वह भारतीय लोगों की निर्बलता को जान गया था और स्वयं युद्ध-नीति जानता था। महमूद का यश मध्य एशिया

के सब भागों में फैल गया था। प्रसिद्ध कवि फ़िरदौसी उसी के काल में हुआ है। महमूद के कहने पर उस ने शाहनामा लिखा। कहते हैं कि सुलतान ने प्रतिज्ञा की थी कि शाहनामा के प्रत्येक पद्य के लिए वह सोने की एक अशरफी देगा। जब शाहनामा समाप्त होगया तो सुलतान ने प्रत्येक पद्य के बदले चाँदी का एक सिक्का गिनवा कर भेज दिया। जब महमूद के दूत धन ले कर वहाँ पहुँचे, तो लोग कवि की मृतक देह को बाहर ले जा रहे थे।

अबुरिहाँ अलबेरूनी—अलबेरूनी खीवा का रहने वाला था। वह बड़ा बुद्धिमान् और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। महमूद ने उसे कैद कर लिया था। महमूद को भय था कि जब वह भारत में जायगा तो अलबेरूनी उस के राज्य में उलट फेर कर देगा। अत: वह अलबेरूनी को भी अपने साथ भारत ले आया। यहाँ उसने अलबेरूनी को छोड़ दिया। यह विद्वान् दस वर्ष तक भारत में रहा। उसने यहाँ संस्कृत विद्या का अध्ययन किया। भारत से जाते हुए संस्कृत के अनेक ग्रन्थ वह अपने साथ ग़ज़नी ले गया।

अलबेरूनी सारी आयु अविवाहित रहा। ग़ज़नी में वह एक मकान में रहने लग पड़ा। प्रति वर्ष एक बार वह इस मकान से बाहर निकलता था। वह भी वर्ष के लिए अन्नादि एकत्र करने को। सारा वर्ष वह अपने ग्रन्थ लिखता रहता था। उसने तीस बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना की है। उनमें से एक भारत के सम्बन्ध में है। इस ग्रन्थ में वह हिन्दुओं की प्राय: सारी ही बातों का उल्लेख करता है। एक स्थान पर वह कहता है कि भारत के ऊँचे दर्जे के विद्वान् ज्ञान-मार्ग के अवलम्बी हैं और मूर्ति-पूजा नहीं करते। उसने अठारह पुराणों की सूची दी है। सांख्य शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र का वह बहुधा उल्लेख करता है।

(**महमूद के आक्रमणों का भारत पर प्रभाव**—पहले लिखा जा चुका है कि महमूद धनसञ्चय के लिए ही भारत में आता था। इसलिए उसने यहाँ आकर अपना कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ा, पर उसके बार-बार के आक्रमणों के कारण, उत्तर भारत की सैनिक शक्ति बहुत दुर्बल हो गई। महमूद से पहले भी उत्तर भारत में शक्तिशाली कोई एक बड़ा राज्य नहीं था, अब तो रहा-सहा राज्य-बल जाता रहा।

सन् ६७७ में तुर्क वंश ने गज़नी का राज्य सँभाला था। सन् १११७ में इस वंश का अन्त हो गया। १४० वर्ष में इस वंश के कोई बारह शासक हुए। अन्तिम सुलतान बहरामशाह था। अलाउद्दीनहुसैन गोरी ने सन् १११७ में गज़नी ले लिया। बहराम भाग कर लाहौर आ गया और सन् ११४६ में यहीं मरा।)

मालवा का परमार भोज—जिन दिनों गज़नी का महमूद उत्तर भारत पर बार बार आक्रमण कर रहा था, उन्हीं दिनों परमार वंश का भोज नाम का एक प्रसिद्ध राजा मालवा में राज्य करता था। उस की राजधानी धारा नगरी थी। उस का राज्य अच्छा विस्तृत था। आस-पास के कई राज्य जीतकर ही उसने अपने राज्य का विस्तार किया था। वह कभी कभी अपने चित्तौड़ के दुर्ग में रहा करता था। भोपाल या भोजपुर का प्रसिद्ध ताल इसी राजा का बनवाया हुआ माना जाता है।

यह राजा स्वयं विद्वान् और विद्वानों की बड़ी प्रतिष्ठा करने वाला था। इसी के राज्य में प्रसिद्ध विद्वान् उवट ने अपना यजुर्वेद-भाष्य रचा था। भोज अथवा उस के नाम से उस के पण्डितों के बनाए हुए बीस-पचीस उच्चकोटि के संस्कृत ग्रन्थ अब भी मिलते हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय

राठौर, चौहान और अफ़ग़ान

गहरवार या राठौर—राठौरों का पुराना नाम गहरवार है। जब गुर्जर प्रतिहार कन्नौज में निर्बल हो गए, तो चन्द्रदेव नाम के एक राठौर सामन्त ने कन्नौज पर आक्रमण करके इसे अपने अधिकार में ले लिया। शनैः शनैः उसने आस-पास के भी कई नगर अपने राज्य में मिला लिए। उसके कुछ काल पश्चात् गोविन्द-चन्द्र राजा हुआ। वह कन्नौज का बड़ा प्रसिद्ध राजा था। उसका पोता जयचन्द्र था। वह ११७० ई० में कन्नौज का राजा बना। राठौरों का राज्य सारे संयुक्त प्रान्त और बिहार तक फैला हुआ था। यही जयचन्द्र था, जिसका राज्य अफ़ग़ान राजा मुहम्मद गोरी ने नष्ट किया।

अजमेर के चौहान—अजमेर में चौहान-वंशीय राजपूतों का राज्य था। महमूद ग़ज़नवी के पीछे चौहानों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की। विग्रहराज इस वंश का बड़ा विजयी राजा था। उसने दिल्ली के तोमर-वंशीय राजा को निकाल कर दिल्ली तक अपना राज्य विस्तृत कर लिया। इस वंश का अन्तिम राजा पृथ्वीराज था। कहते हैं उसका एक विवाह कन्नौज के राजा जयचन्द्र की पुत्री से हुआ था।

दिल्ली के तोमर—कभी पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ या आधुनिक दिल्ली की बड़ी वृद्धि की थी। फिर कई शताब्दियों तक दिल्ली एक

This book must not be spoiled and be

साधारण नगर रह गया। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में तोमर-वंश का दिल्ली पर राज्य था। सन् १०४० में दिल्ली के राजा अनङ्गपाल ने वहाँ एक दृढ़ दुर्ग बनवाया और अनेक मन्दिर भी बनवाए। उन्हीं मन्दिरों को तोड़कर ११६० में उनके पत्थरों से कुतुबमीनार बनाई गई थी।

ग़ोर का शहाबुद्दीन—हिरात और ग़ज़नी के मध्य में ग़ोर नाम का एक छोटा-सा राज्य था। उसकी राजधानी फीरोज़कोह थी। वहाँ ग़यासुद्दीन मुहम्मद नाम का एक राजा था। उसका छोटा भाई शहाबुद्दीन या मुहम्मद गोरी था। जब गज़नवी वंश क्षीण हो गया तो शहाबुद्दीन ने ग़ोर से ही भारत पर आक्रमण आरम्भ किए। शहाबुद्दीन ने ग़ज़नी का राज्य भी ले लिया। ग़ज़नी की धन-सम्पत्ति वह सब लूट ले गया। ग़ज़नी के सुन्दर भवनों को उसने धराशायी कर दिया। वह ग़ज़नी जिसका सौन्दर्य सारे एशिया में सुविख्यात हो गया था अब एक साधारण नगर रह गया। इसके पश्चात् मुहम्मद ग़ोरी ने मुलतान पर आक्रमण किया। फिर उसने भटिण्डे का दुर्ग ले लिया।

शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज का पहला युद्ध—जब शहाबुद्दीन भटिण्डे के दुर्ग को ले चुका तब अजमेर का चौहान राजा पृथ्वीराज शहाबुद्दीन को रोकने के लिए आगे बढ़ा। उसने कई हिन्दू राजाओं की सहायता प्राप्त की। वह थानेसर के समीप तराइन के पास पहुँचा। वहीं उसका शहाबुद्दीन से युद्ध हुआ। शहाबुद्दीन बुरी तरह घायल हुआ और रणक्षेत्र से भाग गया। लाहौर आकर उसने अपनी चिकित्सा कराई और फिर ग़ज़नी चला गया। यह घटना सन ११९१ की है'

इस विजय के पश्चात् पृथ्वीराज ने भटिण्डे के दुर्ग को जा

घेरा। उसका हाकिम ज़ियाउद्दीन १३ मास के पश्चात् परास्त हुआ। मुहम्मद गौरी अपनी पराजय भूला नहीं। अपने घर पर उसने भारी तैयारी की। सन् ११६२ में एक लाख वीस हज़ार सेना लेकर वह फिर भारत आया। थानेसर के पास पृथ्वीराज से उस का युद्ध हुआ। पृथ्वीराज हार कर कैद हुआ और मारा गया। इस विजय से मुहम्मदगौरी ने अजमेर तक का प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया। पंजाब तो पहले ही मुसलमानों के अधिकार में जा चुका था।

पृथ्वीराज का पुत्र गोविन्दराज था। उसने शहाबुद्दीन की अधीनता स्वीकार कर ली! शहाबुद्दीन ने उसे अजमेर की गद्दी पर बिठा दिया। पृथ्वीराज के भाई हरिराज को गोविन्दराज की इस क्रिया पर बड़ा क्रोध आया। उसने गोविन्दराज से अजमेर का राज्य छीन लिया।

कन्नौज पर चढ़ाई—शहाबुद्दीन का तुर्क जाति का एक गुलाम और सेनापति कुतुबुद्दीन 'ऐबक' था। उसने सन् ११६३ में अजमेर वालों से फिर दिल्ली छीन ली। तभी से दिल्ली भारत में मुसलमानी राज्य की राजधानी हुई। हरिराज ने कुतुबुद्दीन से युद्ध किया, पर अन्त में उसे अजमेर छोड़ना पड़ा और इस प्रकार अजमेर भी स्थिर रूप से मुसलमानी राज्य में जा मिला। सन् ११६४ में कुतुबुद्दीन ने कन्नौज पर चढ़ाई की। राठौर राजा जयचन्द चन्दावर के युद्ध में परास्त हुआ। इस विजय से बनारस तक का प्रदेश मुसलमानी अधिकार में चला गया।

गुजरात पर आक्रमण—इस के पश्चात् सन् ११६५ में कुतुबुद्दीन ने गुजरात पर चढ़ाई की। इस चढ़ाई में उस को मुँह की खानी पड़ी। गुजरात वालों ने मेरों की सहायता से उस पर

आक्रमण कर दिया। वह घबरा कर भागा और अजमेर आ गया। उसने मुहम्मदगौरी को दूत भेजे। मुहम्मद गौरी स्वयं एक बड़ी सेना लेकर गुजरात के राजपूतों को दण्ड देने के लिए निकला। आबू के समीप एक युद्ध में बुरी तरह घायल हो कर शहाबुद्दीन लौट गया। अगले वर्ष कुतुबुद्दीन ने फिर गुजरात पर चढ़ाई की और आबू के समीप ही उस ने विजय प्राप्त कर के गुजरात को लूटा।

सन् १२०३ में कुतुबुद्दीन ने कालिञ्जर पर चढ़ाई की। वहाँ राजा परिमर्दन बड़ी वीरता से लड़ा। उसके दो सामन्त थे आल्हा और ऊदल। वे दोनों बड़े वीर थे। उन्होंने घोर युद्ध किया था, पर अन्त में राजा हार गया।

बंगाल-विजय—मुहम्मद गौरी का एक सेनापति मुहम्मद बिन बख्त्यार खिलजी था। उसने ११९७ में बिहार पर आक्रमण किया। वहाँ पालवंश का राज्य था। यह वंश अत्यन्त निर्बल हो गया था। बिहार में उन दिनों बौद्धमत का कुछ-कुछ प्रचार शेष था। इसी कारण वहाँ की प्रजा भी हतोत्साह थी। केवल २०० सवारों की सहायता से उसने बिहार पर अधिकार कर लिया। नालन्दा आदि के विश्वविद्यालय इसी प्रान्त में थे। वहाँ का बहुमूल्य साहित्य खिलजी के सैनिकों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। जिस प्रकार सिकन्दरिया का संसार-प्रसिद्ध पुस्तकालय खलीफाओं ने नष्ट कर पुराने इतिहास और विज्ञान के लाखों अमूल्य ग्रन्थ जला दिए थे उसी प्रकार बख्त्यार ने नालन्दा आदि के पुस्तकालयों को नष्ट कर के भारतीय सभ्यता के लाखों ग्रन्थों को अग्नि की भेंट कर दिया। उन विश्वविद्यालयों में रहने वाले सहस्रों बौद्ध भिक्षु कत्ल किए गए।

इस के पश्चात् सन् ११९९ में बख्त्यार ने १८ सवार लेकर सेन-वंश के राजा लक्ष्मण सेन की राजधानी नदिया पर चढ़ाई की। राजा नगर छोड़ गया, मुसलमानों ने नदिया को भरपूर लूटा। बख्त्यार ने गौड़ को अपना केन्द्र बनाया और वहाँ अनेक मसजिदें बनवाई।

गौरी की मृत्यु—इस प्रकार सारा उत्तर-भारत मुसलमानों के राज्य में चला गया। राजपूतों की रही-सही शक्ति भी दिन प्रति दिन कम होती गई। गौरी का स्थापित किया हुआ मुसलमानी राज्य भारत में स्थायी होता गया। मुहमद गौरी की मृत्यु सन् १२०६ में हुई। कुतुबुद्दीन तब भी भारत में उसका नायब था।

बाईसवाँ अध्याय

गुलाम-वंश सन् (१२०६—१२९०)

कुतुबुद्दीन (सन् १२०६–१२१०)—शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी की मृत्यु के समय कुतुबुद्दीन भारत में उसका प्रतिनिधि शासक था। वह गुलामवंश का एक वीर था। सेनापति के काम में उस की दक्षता की धूम थी। अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात् (सन १२०६) कुतुबुद्दीन ऐबक स्वयं भारत का बादशाह बन बैठा। वह उदार हृदय और न्याय प्रिय था। उस ने दिल्ली में एक मसजिद बनवाई। कुतुब मीनार का बनवाना भी उसी ने आरम्भ किया था। पर कई ऐतिहासिक कहते हैं कि पृथ्वीराज ने यह मीनार बनवाई थी और कुतुबुद्दीन ने थोड़ी सी समाप्ति कर के उसे अपना

नाम दे दिया। कुतुबुद्दीन दूरदर्शी व्यक्ति था। उसने अपनी शक्ति अपने राज्य के दृढ़ करने में लगाई। उसने गुलाम वंश के कई ऐसे विवाह सम्बन्ध जोड़े कि जिन से यह वंश प्रबल हो गया। सन् १२१० में वह घोड़े से गिर कर मर गया।

शमसुद्दीन अल्तमश (सन् १२११–१२३६)—कुतुबुद्दीन के पुत्र का नाम आरामशाह था। कुतुबुद्दीन के बाद वह गद्दी पर बैठा, पर बहुत दिन राज्य नहीं कर सका। बदायूँ के सूबेदार अल्तमश ने उसे गद्दी से उतार कर स्वयं राज्य ले लिया। उस समय मुसलमानों ने भारत में अपने पृथक्-पृथक् राज्य स्थापित कर लिए थे। ये राज्य थे लाहौर, दिल्ली, सिन्ध और बिहार।

गद्दी पर बैठते ही अल्तमश ने लाहौर के सूबे पर अपना अधिकार कर लिया।

बौद्ध मंगोल चंगेज़खाँ—उत्तर-पश्चिमी चीन में मंगोल नाम की एक जाति रहती थी। मंगोल लोग बौद्ध थे। चंगेज़खाँ नाम का एक वीर उनमें उत्पन्न हुआ। वह बौद्ध होते हुए भी बड़ा रणरसिक था। उसने मंगोल जाति को संगठित किया और अनेक विजय करके मंगोल का एक विशाल साम्राज्य बना दिया। योरुप के अनेक भाग उसके राज्य में मिल गए। उत्तरी चीन और तुर्किस्तान को जीतकर वह शाह जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ भारत में आ पहुँचा। उसने अफ़गानिस्तान को उजाड़ दिया और हिरात तथा पेशावर ले लिए। अफ़गानिस्तान वालों ने जिस निर्दयता से भारत के कई भाग उजाड़े थे, उससे अधिक क्रूरता से उसने अफ़गानिस्तान को उजाड़ा। क्या वह बौद्धों पर किए गए अत्याचारों का बदला ले रहा था? शाह जलालुद्दीन भागता-भागता दिल्ली आ पहुँचा। यहाँ अल्तमश ने उसे शरण

दी, पर चंगेज़ का भय अल्तमश के मन में भी बैठ गया। चंगेज़ पहले चाहता था कि उत्तर भारत से होकर तिब्बत के मार्ग से अपने देश को लौट जाय, पर शीघ्र ही उसके विचार में परिवर्तन आ गया। यदि वह भारत से होकर जाता, तो भारत का भविष्य कुछ और हो जाता। उसके लौटने पर अल्तमश ने सन् १२२५ में बङ्गाल ले लिया। तीन वर्ष पश्चात् सन् १२२८ में उसने सिन्ध भी अपने शासन में सम्मिलित कर लिया।

शीघ्र ही उसने (रणथम्भोर, माँडू और ग्वालियर) को भी अपने अधीन कर लिया। मेवाड़ पर भी वह बड़े दल बल के साथ चढ़ा, पर वहाँ उसको हार खानी पड़ी। मालवा के राजपूतों को भी उस ने जीत लिया। सन् १२३४ तक (नर्मदा) तक का प्रदेश उस के राज्य में आ गया।

सुलताना रज़िया बेगम (सन् १२३६-१२४०)—अल्तमश के पुत्रों में बादशाहों के गुण न थे, अतः अल्तमश की पुत्री रज़िया ने भारत पर राज्य करना आरम्भ किया। रज़िया में अपने पिता के अनेक गुण थे। उसने अपने पिता के राज्यकाल में ही शासन का अनुभव कर लिया था। वह मरदाने वस्त्र पहन कर दरबार में बैठती थी और प्रजाहित के अनेक काम करती थी। उसके कई सरदार उस से कुपित रहते थे। ऐसा जानते हुए भी प्रेम में उलझ कर रज़िया एक भूल कर बैठी। एक हब्शी गुलाम से उसका प्रेम प्रसिद्ध हो गया। सरदारों ने विद्रोह कर दिया। रज़िया ने बड़ी कुशलता से विद्रोह शान्त किया और अपनी स्थिति को बचाने के लिए उस ने एक तुर्की सरदार से विवाह कर लिया। सरदार इस पर भी क्रुद्ध हो गए और उन्होंने पुनः विद्रोह कर के रज़िया और उस के पति दोनों को कैद कर लिया। कैद से भागे हुए दोनों

पति-पत्नी जङ्गल में मारे गए। रज़िया का राज्यकाल लगभग साढ़े तीन वर्ष रहा।

(रज़िया ही एक ऐसी देवी हुई है जिसे दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पर पुरुषों की अमानुषी कठोरता के कारण इतनी योग्य होती हुई भी वह अपनी मानव यात्रा को निर्विघ्न न समाप्त कर सकी।)

नासिरुद्दीन—रज़िया के देहान्त के पश्चात् उस के दो भाई बारी बारी से गद्दी पर बैठे, पर वे नितान्त अयोग्य थे। तब सन् १२४६ में उसका तीसरा भाई नासिरुद्दीन बादशाह बना। यह बड़ा दयावान और धर्मात्मा था। ऐसे दयावान बादशाह की उस समय आवश्यकता न थी। उस का सारा राज-कार्य उसका गुलाम बलबन करता था। बलबन के ही कौशल से उसका राज्य दृढ़ हो गया। इसी समय मुग़लों ने भारत पर आक्रमण आरम्भ किए। बलबन ने सारे सीमा प्रदेश में दुर्ग बनवाए और इन आक्रमणों से भारत की रक्षा की। बलबन ने राजपूतों के भी कई विद्रोह शान्त किए। इतने में सन् १२६६ में नासिरुद्दीन परलोक सिधारा।

बलबन—सन् १२६६ में जब सुलतान नासिरुद्दीन का देहान्त हुआ, तब बलबन ६७ वर्ष का था। स्वामी की मृत्यु के पश्चात् उसने राजगद्दी सँभाली। वह एक वीर और दूरदर्शी शासक था। योग्य होने के कारण ही वह भारत का सम्राट् बना। भारत, तिब्बत और मध्य एशिया के अनेक राजा उससे डरते थे। दण्ड देने में वह दया नहीं करता था। अपने शत्रुओं पर उसने कभी करुणा नहीं दिखाई। अपनी सेना को वह सदा तैयार रखता था।

बङ्गाल-विद्रोह—मुसलमानी राज्य में एक भारी दोष रहा है। मुसलमान बादशाह अपने सूबेदारों को स्थायी बना देते थे।

ब्रिटिश लोग यह नहीं करते। वे तो अपने वायसराय को भी ५ वर्ष से अधिक इस पद पर नहीं रहने देते। जो सूबेदार पुराने हो जाते थे, वे कई बार विद्रोह कर देते थे। बङ्गाल के सूबेदार ने सोचा कि बादशाह अब लगभग ८० वर्ष का है। वह बहुत वृद्ध है, वह क्या कर सकेगा, अतः उसने कर भेजना बन्द कर दिया। बादशाह ने सेनापति को भेजा, पर उसने हार खाई। अन्त को बादशाह ने स्वयं आक्रमण किया। सूबेदार हार गया और कत्ल किया गया। बादशाह ने विद्रोहियों को इतने कड़े दण्ड दिए कि सारी प्रजा भयभीत हो गई।

इसके पश्चात् बादशाह ने अपने पुत्र बगराखां को बङ्गाल का सूबेदार बनाया। बङ्गाल का राज्य कई पीढ़ी तक बगराखाँ के ही कुल में रहा।

बलबन का दरबार—जिस प्रकार चंगेज़खाँ का दरबार बड़ा प्रसिद्ध था, वैसे ही बलबन का दरबार भी एक दृष्टि से निराला ही दरबार था। एशिया के बहुत से प्रदेशों के धनाढ्य लोग और व्यापारी उस के दरबार में रहते थे। बलबन गम्भीर प्रकृति का मनुष्य था। वह दरबार में किसी प्रकार का हँसी ठट्ठा नहीं होने देता था। दूर-दूर से कवि और विद्वान् लोग आकर बलबन के दरबार में एकत्र होते थे। फारसी और हिन्दी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो इसी बलबन के दरबार में था। दिल्ली के सिंहासन पर जो शक्तिशाली बादशाह बैठे हैं, बलबन की गणना उन्हीं में होती है। बलबन अपने काल की राजनीति को भली प्रकार से समझता था।

सन् १२८६ में बलबन की मृत्यु हुई। तब वह लगभग ८६ वर्ष का था।

कैकुबाद—बलबन अपने पुत्र बगराखाँ को बङ्गाल का सूबेदार बनाकर वहाँ भेज चुका था। बगराखाँ का पुत्र कैकुबाद था। वह आलसी और दुष्ट प्रकृति का पुरुष था। भोग-विलास के सिवाय उसे कुछ आता ही न था। बलबन के बाद वह बादशाह बना। उस के समय में गुलाम राज्य में विद्रोह के चिह्न दिखाई देने लगे। सरदार अपना अपना संघ बना रहे थे। बगराखाँ स्वयं उसे समझाने के लिए बङ्गाल से आया पर वह पिता के उपदेश से परे जा चुका था। ऐसा नीतिहीन बादशाह भला कितने दिन राज्य कर सकता था। खिलजी वंश का जलालुद्दीन नाम का एक सरदार था। उसने कैकुबाद का वध करा कर शव को यमुना में बहा दिया। सन् १२६० में कैकुबाद की मृत्यु के साथ ही गुलाम वंश का शासन समाप्त हो गया।

तेईसवाँ अध्याय

खिलजी वंश (१२६०—१३२०)

जलालुद्दीन खिलजी (सन् १२९०—१२९६)—७० वर्ष की आयु में जलालुद्दीन दिल्ली का सुलतान बना। वह बड़ा नीतिज्ञ था। उसे पता था कि उसने अपने स्वामी को मरवाया है, अतः बहुत से सरदार उसके विरुद्ध होंगे। सिंहासनारूढ़ होते ही उसने बहुत सा रुपया सरदारों को बाँटा और अनेक जागीरें भी दीं। इस प्रकार उसने सब सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया। जलालुद्दीन ने रणथम्भोर पर चढ़ाई की। वहाँ के राजपूत मरने मारने को उद्यत थे ही, बहुत रक्तपात होता देख कर

बादशाह ने अपनी सेना लौटा ली। इधर मुगल अपने आक्रमण करते रहते थे। लाहौर के पास बादशाह की सेना ने उन्हें पराजित किया। अनेक मुगल सैनिकों ने बादशाह की सेना में नौकरी कर ली।

अलाउद्दीन का देवगिरि पर आक्रमण—अलाउद्दीन खिलजी बादशाह का जामाता और भतीजा था। उसे राजा ने कड़ा प्रान्त का हाकिम बना दिया था। उसे पता लगा कि देवगिरि के राजाओं के पास बहुत धन है। उस ने देवगिरि को लूटने का संकल्प कर लिया। उस समय देवगिरि में यादव राजपूत रामदेव शासन करता था। बादशाह को अलाउद्दीन ने इस विषय की कोई सूचना न दी। सन् १२९४ में ८००० सवारों को लेकर उस ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसने प्रसिद्ध कर दिया कि बादशाह से क्रुद्ध हो कर वह नौकरी की खोज में दक्षिण जा रहा है। इस प्रकार उसने सहसा देवगिरि पर आक्रमण कर दिया। देवगिरि का राजा खूब लड़ा, पर हार गया। अलाउद्दीन ने देवगिरि में भरपूर लूट मचाई और बहुत-सा धन लेकर वह घर की ओर लौटा।

जलालुद्दीन की मृत्यु—अलाउद्दीन के मन में अब दिल्ली का भी सिंहासन लेने की कामना उत्पन्न हुई। जलालुद्दीन के मन्त्रियों को उस का यह मनोभाव खटक गया। वे इसका कोई उपाय करना चाहते थे। परन्तु जलालुद्दीन ने उन की एक न मानी। वह अपने भतीजे की वीरता से प्रसन्न हो उस से मिलने चल पड़ा। जब दोनों एक दूसरे से मिले तो अलाउद्दीन के एक नौकर ने बादशाह की हत्या कर डाली। इस प्रकार सन् १२९६ में बादशाह की मृत्यु हो गई।

अलाउद्दीन (सन् १२९६—१३१५)—जलालुद्दीन के पुत्र अभी तक जीते थे। कितने ही सरदारों की मृत बादशाह के पुत्रों से सहानुभूति थी। अलाउद्दीन उन सब से डरता था। पर कुछ सरदारों को उस ने अपनी ओर कर लिया और वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। जलालुद्दीन का एक पुत्र दिल्ली का बादशाह बन बैठा था। अलाउद्दीन ने सरदारों को इतना प्रसन्न कर लिया था कि जलालुद्दीन के पुत्र के साथी बहुत थोड़े रह गए। वह भयभीत हो कर मुलतान को भागा और अलाउद्दीन ने बड़ी सज धज के साथ दिल्ली में प्रवेश किया। शनैः शनैः सारे सरदारों ने अलाउद्दीन को बादशाह मान लिया, और वह सन् १२९६ में दिल्ली की राजगद्दी का स्वामी हो गया।

गुजरात विजय—सन १२९७ में अलाउद्दीन ने गुजरात पर आक्रमण किया। अन्हलवाड़े के राजा कर्ण के साथ उस का युद्ध हुआ। राजा युद्ध में मारा गया रानी कमलादेवी कैद हो गई। अलाउद्दीन ने उसे अपने अन्तःपुर में रख लिया। इन्हीं दिनों बादशाह की सेना में एक गुलाम प्रविष्ट हुआ जो इतिहास में मलिक काफ़ूर के नाम से प्रसिद्ध है।

मुगल और दिल्ली—मुगल लोगों ने भारत पर आक्रमण करना बन्द नहीं किया था। सन १२९८ में मुगल दिल्ली पर चढ़ आये। बादशाह ने दिल्ली के बाहर उन से युद्ध कर के उन्हें परास्त किया। इस के पश्चात् अलाउद्दीन ने अपनी उत्तरी सीमा पर अनेक दुर्ग निर्माण कराए। उसने गाज़ी तुगलक (गयासुद्दीन) को पञ्जाब के दिपालपुर नगर में अपना नायब बनाया। इस प्रकार के प्रबन्ध से इस के जीवन-काल तक तो मुगलों के आक्रमण बन्द हो गए।

राजपूताना पर आक्रमण—राजपूताना के राजपूत सदा सिर उठाये रहते थे। बादशाह ने राजपूताना को अपने साम्राज्य में मिलाने की ठान ली। रणथम्भोर राजपूताना का एक अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग था। बादशाह ने स्वयं उसका घेरा डाला। राजा युद्ध में मारा गया और रणथम्भोर पर बादशाह का अधिकार हो गया। फिर बादशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजा रत्नसिंह उन दिनों चित्तौड़ का राजा था। छः मास चित्तौड़ पर युद्ध होता रहा। जब राजपूत हारने लगे तो सब स्त्रियों ने जौहर के संस्कार के पश्चात् चिता में प्रवेश किया। रत्नसिंह की रानी पद्मिनी भी चिता-कुंड में जल कर भस्म हो गई। वह एक अनिंद्य सुन्दरी थी। बादशाह उसे अपने अन्तःपुर में डालना चाहता था। राजपूतों ने भी वीरता से लड़कर अपने प्राण त्यागे। जब बादशाह दुर्ग में प्रविष्ट हुआ तो उस के हाथ कुछ न आया। राजपूतों के देश-हित और मान-रक्षा का उस ने ज्वलन्त प्रमाण देख लिया। इसी प्रकार राजपूताना के कई अन्य दुर्ग भी अलाउद्दीन ने अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए।

अलाउद्दीन की महत्वाकांक्षा—अलाउद्दीन का साहस दिन प्रति दिन बढ़ता जाता था। हिन्दू राजा परस्पर के कलह से निर्बल हो रहे थे। वे विलासी भी अत्यधिक हो गए थे। उन की सेनाएँ थोड़ी थीं और उन का सेना-सञ्चालन भी उच्च कोटि का नहीं था। ऐसी अवस्था में अलाउद्दीन ने गुजरात और राजपूताना जीत लिए। वह अपने आप को एक बड़ा विजयी मानने लग पड़ा। अब उस की इच्छा दक्षिण विजय की हुई।

मलिक काफ़ूर का दक्षिण पर आक्रमण—बादशाह की सेना में रहते रहते काफ़ूर सेनापति हो गया था। वह बादशाह का

मन्त्री भी था। सन् १३०६ के लगभग वह दक्षिण की ओर बढ़ा। उस के पास एक बड़ी भारी सेना थी। उस ने पहले राजा कर्ण की पुत्री देवलदेवी को पकड़ा। देवलदेवी बादशाह के पुत्र खिज़रखाँ से ब्याही गई। बादशाह इससे पूर्व स्वयं देवगिरि के रामदेव पर चढ़ाई कर चुका था। अब काफ़ूर ने भी उसे जा घेरा। राजा हार गया, पर बादशाह का आधिपत्य स्वीकार करने के कारण बादशाह ने उसे अपना कर-दाता बना लिया। कुछ काल पश्चात् रामदेव मर गया। रामदेव के पुत्र ने स्वतंत्र होने की चेष्टा की, पर वह एक युद्ध में मारा गया। तब से महाराष्ट्र पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया।

इसके पश्चात् काफ़ूर कुमारी अन्तरीप तक बढ़ा। एक के पश्चात् दूसरा हिन्दू राज्य उस ने ले लिया। दक्षिण की अथाह लूट ले कर काफ़ूर दिल्ली लौटा। उस के लाए हुए धन को देख कर बादशाह विस्मित हुआ और काफ़ूर प्रधान-मन्त्री बनाया गया।

अलाउद्दीन का साम्राज्य—अलाउद्दीन का साम्राज्य मौर्य, गुप्त या आधुनिक ब्रिटिश साम्राज्य के समान सुदृढ़ तो नहीं था, पर था पर्याप्त फैला हुआ। उत्तर भारत में पंजाब का आधा भाग, राजपूताना और सिन्ध उस ने ले लिए थे। पूर्व में वह बङ्गाल तक पहुँच गया था। दक्षिण में मालवा, गुजरात और सुदूर दक्षिण के अनेक भाग उस ने जीत लिये थे। राजनीति के गम्भीर तत्व न तो अलाउद्दीन जानता था, और न ही उस के मन्त्री। इस लिए उस का साम्राज्य स्थायी न था। उस के जीवन काल में ही इस साम्राज्य में शिथिलता आ गई।

शासन-प्रणाली—अलाउद्दीन जहाँ लूट पर पर्याप्त ध्यान

रखता था, वहाँ उसने एक पर्याप्त बड़ा साम्राज्य भी बना लिया था। अपढ़ होते हुए भी वह एक वीर सैनिक था। राजनीति भी थोड़ी थोड़ी वर्तता था। अपने पूर्वजों की अपेक्षा उसने एक दो बातों में बड़ी सावधानी की। मुसलमानी राज्य के सरदार ही प्रायः बादशाह के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया करते थे। अलाउद्दीन ने गुप्तचरों का एक जाल सा बिछा दिया। इस प्रकार वह अपने सरदारों की प्रत्येक क्रिया से परिचित हो जाता था। उसके सरदार उस से बहुत भयभीत रहने लगे। सरदार लोग प्रायः इकट्ठे होकर षड्यन्त्र रचा करते थे। बादशाह ने उनका एकत्र होना भी बन्द कर दिया।

अलाउद्दीन बड़ा कठोर शासक था। हिन्दुओं पर उसने अनेक अत्याचार किए। उसका विश्वास था कि हिन्दुओं को अत्यन्त निर्धन और दीन-हीन दशा में पहुँचा देना चाहिए, अन्यथा वे अपने पूर्व ऐश्वर्य को सोचसोच कर सदा उठने का प्रयत्न करते रहेंगे। अतः उसने ५० प्रतिशत कर भूमि पर लगा दिया। पशुओं और घरों पर भी टैक्स लगाया गया। हिन्दू दबते जा रहे थे। उनके घर वीरान दिखाई देते थे। ऊपर से वे शक्ति-हीन हो गए थे, पर उनके अन्दर एक क्रोधाग्नि जल रही थी। बादशाह की कठोरता और स्वेच्छाचार के कारण प्रजा तंग थी, पर बोल नहीं सकती थी। इन्हीं कारणों से बादशाह के मरते ही उसका साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

खिलजी राज्य का ध्वंस—सन् १३१५ में अलाउद्दीन का देहान्त हुआ। राज की बागडोर उस समय काफूर के हाथ में थी। उसी की अनुमति से बादशाह का एक पुत्र राजगद्दी पर बैठा। स्थान-स्थान पर विद्रोह आरम्भ हो गए। इन्हीं विद्रोहों के कारण

लगभग एक मास पश्चात् मलिक काफूर मारा गया। बादशाह का एक दूसरा पुत्र था, कुतुबुद्दीन मुबारक। उसने अपने भाई को राजसिंहासन से हटा दिया और सन् १३१६ में स्वयं बादशाह बन बैठा। कुतुबुद्दीन अत्यधिक विलासी था। अलाउद्दीन की लूट की सम्पत्ति ने उसे शक्तिहीन कर दिया था। भोग-विलास की लत में पड़ा हुआ बादशाह दिल्ली के अमीरों के घरों पर नाच-रंग देखा करता था।

देवगिरि के राजा से युद्ध—अवसर ताड़ कर देवगिरि का राजा हरपालदेव स्वतन्त्र हो बैठा, परन्तु वह अपनी सेना पूर्ण रूप से तैयार न कर सका था कि बादशाह ने स्वयं उस पर चढ़ाई की और उसे हरा कर मरवा दिया। इस क्षणिक विजय के कारण बादशाह पहले की अपेक्षा और भी अधिक विलासी हो गया। वह नीच-प्रकृति के लोगों से मेल रखता था। ऐसा ही एक व्यक्ति खुसरो था। उसे बादशाह ने मन्त्री बना लिया था। इसी खुसरो ने बादशाह को मार डाला और सिंहासन पर स्वयं बैठ गया।

नासिरुद्दीन खुसरो—खुसरो मुसलमानों पर अत्याचार, कुरान का अपमान और मस्जिदों का तिरस्कार करता था। मुसलमान सरदार उससे दु:खी हो गए। ऐसी अवस्था में पंजाब के दिपालपुर के नायब गयासुद्दीन तुगलक ने खुसरो पर चढ़ाई की। युद्ध में खुसरो मारा गया। तब गयासुद्दीन दिल्ली के राज्य का स्वामी बना।

अलाउद्दीन का बनाया हुआ साम्राज्य पाँच ही वर्ष में अब तुगलक वंश के अधीन हो गया। इस पाँच वर्ष के अन्तर में अनेक राजपूत राजाओं ने अपनी अपनी स्वतंत्रता फिर स्थिर कर ली।

चौबीसवां अध्याय

तुगलक वंश १३२०—१४१२

गयासुद्दीन तुगलक (सन् १३२०-१३२५)— गयासुद्दीन ने सन् १३२० में दिल्ली का राजसिंहासन सँभाला। उसका पिता एक तुर्क और माता पञ्जाब के जाट-कुल की थी। देर तक पञ्जाब में नायब रहने के कारण उसने कई अनुभव प्राप्त कर लिए थे। यद्यपि वह पक्का मुसलमान था, पर था बड़ा उदार और श्रेष्ठ। उसने अपने सुप्रबन्ध से साम्राज्य को फिर सँभाल लिया।

दक्षिण पर आक्रमण— दक्षिण के वरगल प्रदेश पर राजा प्रताप-रुद्र दूसरे का राज्य था। उस पर बादशाह के पुत्र जूना ने चढ़ाई की और उसे अपने अधीन कर लिया। सन् १३२५ में बङ्गाल में विद्रोह उठा। बादशाह स्वयं उसे शान्त करने चला। जब वह बङ्गाल को शान्त करके घर लौटा तो अपने एक नए महल के गिरने से सन् १३२५ में मर गया।

जूना या मुहम्मद तुगलक (सन् १३२५-१३५१)— अपने पिता के मर जाने पर जूना ने राजगद्दी ली। उसने अपना नाम मुहम्मद तुगलक रखा। मुहम्मद तुगलक के सम्बन्ध में मुसलमान ऐतिहासिक लिखते हैं कि वह बड़ा विद्वान् और समझदार था। उसके समान कोई विद्वान् मुसलमान बादशाह अभी तक दिल्ली के सिंहासन पर नहीं बैठा था। वह अनेक विषयों का पण्डित था और अच्छी स्मरण-शक्ति रखता था। वैद्यक, साहित्य, गणित

ज्योतिष, दर्शन आदि सब विषय उसने देखे थे। वह काव्यरसिक और स्वयं एक कवि था। मुल्ला लोगों को राज्य में वह दखल नहीं देने देता था।

पर दोष भी उसमें कम न थे। वह अपनी बात पर बड़ा हठ करता था। जो बात एक बार करना चाहता था, उसे कर के ही छोड़ता था। उसका दण्ड-नियम क्रूरता से भरा हुआ था। विद्वान् होते हुए भी वह राजनीतिक रूप से गहरा देखने वाला नहीं था—अदूरदर्शी था। मन में जो लहर उठती उसे वह कार्य में परिणत करना चाहता था। इस प्रकार उसने कई ऐसी बातें कीं जो उसके दुःख का कारण बन गईं। उसको क्रोध भी अधिक आ जाता था, इसलिए उसके समीप रहने वाले उस से बहुत डरा करते थे।

राजधानी का बदलना—बादशाह के प्रारम्भिक वर्ष युद्धों में बीते। उसने अपने साम्राज्य को बहुत दृढ़ किया। उससे पहले किसी मुसलमान शासक का राज्य इतना विस्तृत नहीं था। उसके साम्राज्य में २३ सूबे थे। उनमें से कुछ प्रधान सूबे दिल्ली, लाहौर, गुजरात, मालवा, कन्नौज और देवगिरि आदि थे।

उसका साम्राज्य सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। दक्षिण में बहुधा विद्रोह हो जाते थे। बादशाह ने सोचा कि दिल्ली से इतने दूर के प्रदेशों का सँभालना कठिन है। उसने देवगिरि को अपना केन्द्र बनाना चाहा। एक दृष्टि से तो देवगिरि ऐसा नगर था, जो भारत का केन्द्र बन सकता था। मुहम्मद तुगलक ने आज्ञा की कि उसके राजकर्मचारी देवगिरि को चलें। इसके साथ उसने एक भारी भूल की। उसे अपने समृद्ध नगर-वासियों से कुछ प्रेम सा था। उसी प्रेम में उसने उनको भी आज्ञा दी कि

वे भी अपने सब धन-दौलत सहित देवगिरि को चले। बादशाह ने उनकी यात्रा का खूब प्रबन्ध किया। लोग दिल्ली छोड़ने लगे। दिल्ली का पुराना नगर उजाड़ हो चला।

सहस्रों व्यक्तियों की इतनी दूर की यात्रा कोई सरल बात न थी। प्रजा को बहुत कष्ट हुआ। नए नगर में वास करने पर दिल्ली के लोगों को दुःख अनुभव होने लगे। वहाँ की भाषा ही और थी। यह भाषा की कठिनाई उस समय भी भारत में अधिक थी। वहाँ की रीति-नीति ही नए ढंग की थी। बादशाह का अनुभव विफल हुआ। लोगों को पुनः दिल्ली लौटने की आज्ञा हुई। थके-माँदे, हतोत्साह हिन्दू-मुसलमान घरों को लौटे, पर दिल्ली की पहली शोभा नहीं जमी। लोग बादशाह के इस कृत्य से बहुत दुःखी थे। इतनी प्रजा को सैकड़ों मील दूर ले जाना बुद्धिमत्ता का काम नहीं कहा जा सकता।

इसके सिवाय उसने एक और अदूरदर्शिता का काम किया। उसके समय मुगल दिल्ली पर चढ़ आए, पर उसने उन्हें धन देकर लौटा दिया। शत्रु को अपनी राजधानी पर आने देना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। इस से जाना जाता है कि इतना दृढ़ मुसलमानी साम्राज्य भी अन्दर से कैसा पोला था।

ताँबे का सिक्का—खिलजी और तुग़लक साम्राज्य सरदारों के आश्रय पर स्थिर थे। सरदार बिगड़े कि राज्य में गड़बड़ पड़ी। अतः सरदारों को प्रसन्न रखने के लिए बादशाह बहुत सा धन बाँट दिया करता था। इसके साथ उत्तर भारत में एक भारी दुर्भिक्ष पड़ा। बादशाह अपनी सेना भी बहुत बड़ी रखना चाहता था। इन सब कारणों से धन की बड़ी आवश्यकता थी। बादशाह ने ताँबे का सिक्का चला दिया। वह सिक्का सोने चाँदी के सिक्के

के बराबर था। बादशाह ने अगली बात नहीं सोची। सहस्रों पुरुष नकली सिक्के बनाने लग पड़े। व्यापारियों को सन्देह हो गया। व्यापार बन्द होने लगा। अपनी साख बचाने के लिए बादशाह ने आज्ञा की कि ताँबे के सब सिक्कों के बदले सोने-चाँदी के सिक्के राजकोष से दे दिए जाएँ। ऐसे होते ही राजकोष खाली हो गया। लोग नकली सिक्कों के बदले में भी सोने चाँदी के सिक्के ले गये। औषध उलटी पड़ी। निवृत्ति के स्थान में रोग आगे से भी कहीं बढ़ गया।

राज्य-प्रबन्ध—बादशाह ने हिन्दू प्रजा पर अलाउद्दीन की कठोरता स्थिर रखी। वह भी उन्हें निर्धन करके अपने आधिपत्य में रखना चाहता था। किसानों पर उसने भारी टैक्स लगाए। दूसरे टैक्स भी बहुत बढ़ा दिए।

एक ओर जहाँ अत्याचार की सीमा हो चुकी थी, दूसरी ओर उसने अनेक मदरसे और औषधालय स्थापित कराए। इन में दवाई बिना मूल्य मिलती थी। अपराध करने पर मुल्ला लोगों को भी दण्ड मिलता था। विदेशियों का बादशाह मान करता था। उसके दरबार में चीनी, तुर्की और फ़ारसी विद्वान् विद्यमान थे। दुर्भिक्ष के समय बादशाह ने लोगों की पर्याप्त सहायता की थी। कहते हैं उसने सती की प्रथा रोकने का भी यत्न किया था।

विद्रोह—अब बादशाह को अपनी भूलों का फल मिलना आरम्भ होने लगा। उसकी क्रूरता के कारण लोगों के मन अन्दर ही अन्दर जल रहे थे। धीरे धीरे सभी स्थानों पर उसके विरुद्ध विद्रोह आरम्भ हुआ। पहले भाबर स्वतन्त्र हुआ। फिर सन् १३३७ में बङ्गाल भी साम्राज्य से निकल

गया। बादशाह उनको अधीन न कर सका । मुलतान और अवध के सूबे भी सिर उठाने लगे । देवगिरि में विद्रोह की अग्नि बहुत भड़की। सन् १३४७ में एक अफ़गान हसन गंगू ने वहाँ एक स्वतन्त्र राज्य खड़ा कर लिया । यह राज्य पीछे से इतिहास में बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ । बहमनी राजाओं ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ाई। गुलबर्गा इनकी राजधानी थी । इनके और विजयनगर राज्य के अनेक युद्ध हुए।

विजयनगर के हिन्दू-राज्य की स्थापना—उन्हीं दिनों सन् १३३६ में विजयनगर में एक दृढ़ हिन्दू राज्य स्थापित हो गया । उस राज्य ने दक्षिण के इतिहास में बड़ा उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। इस घोर पतन के काल में यही एक हिन्दू राज्य था, जिसने आर्य संस्कृति, साहित्य और विज्ञान की आशातीत रक्षा की। विजयनगर राज्य के प्रवर्तक का नाम हरिहर प्रथम था। हरिहर ने धीरे धीरे अनेक प्रदेश अपने राज्य में मिला लिए और नीचे के दक्षिण को अफ़गान साम्राज्य के बन्धनों से स्वतन्त्र कर दिया। इस के राज्य का विस्तार तुंगभद्रा नदी से लेकर कुमारी अन्तरीप तक था।

महामन्त्री आचार्य सायण—विजय-नगर के हिन्दू राज्य में बुक्क प्रथम और हरिहर द्वितीय के काल में एक बड़ा विद्वान् ब्राह्मण मन्त्री था। उस मन्त्री का नाम माधव था। उसी का भाई प्रसिद्ध वेद-भाष्यकार सायण था। सायण (सन् १३१५-१४८७) ७२ वर्ष की आयु तक जीता रहा। माधव और सायण दोनों भाइयों के सतत परिश्रम से विजय-नगर का हिन्दू राज्य एक छोटा सा साम्राज्य बन गया।

विजयनगर अपने प्रकार का निराला नगर था। इस में

सात दुर्ग और सात ही फसीलों (प्राकारों) के घेरे थे। इस नगर पर चढ़ाई करना कठिन ही नहीं असम्भव था। बाजारों का ऐश्वर्य बहुत बढ़ा चढ़ा था। राजा का धन भी अथाह था। उस का सिंहासन सब सोने का बना हुआ था। सन् १५६५ में इस राज्य का पतन हुआ।

मुम्मद तुगलक की मृत्यु—विद्रोहियों से युद्ध करते करते बादशाह थक गया। विद्रोही फिर भी शान्त नहीं हुए। बादशाह का दिल टूटा जाता था। अन्त को वह रोगी हो गया और सन् १३५१ में मर गया।

इब्नबतूता—यह अफ्रीका निवासी एक साहसी यात्री था। सन् १३३३ में मुहम्मद तुगलक के काल में वह भारत आया। आठ वर्ष वह बादशाह के पास नौकर रहा। उस ने तत्कालीन दरबार का अच्छा वर्णन किया है। भारत के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि यहाँ अन्याय नहीं था और लोग व्यापार आदि कर के धन-सञ्चय करते थे। जहाज़ों के द्वारा भी बहुत व्यापार होता था।

फ़ीरोज़शाह तुगलक—(सन् १३५१—१३८८)-मुहम्मद तुगलक का चचेरा भाई फीरोज़ तुगलक अब राजसिंहासन पर बैठा।

शासन-सुधार—राज्य आरम्भ करते ही फ़ीरोज ने पहले बादशाह की नीति बदल दी। वह प्रजा को अपने अनुकूल करने में सफल हुआ। उस के शासन की मुसलमानी इतिहास में बड़ी प्रशंसा है। पर मुसलमानों पर ही उसकी दया थी। पहले साधारण हिन्दू जज़िया देते थे, ब्राह्मण इस से मुक्त थे। फ़ीरोज़ ने ब्राह्मणों पर भी जज़िये का कर लगा दिया। ब्राह्मणों के बहुत विनय करने पर भी उसने उनकी एक न सुनी। फ़ीरोज़ ने सतलुज और

यमुना से दो नहरें निकलवाईं । इन के कारण उसकी आय बहुत बढ़ गई। इसके अतिरिक्त उसने अनेक सड़कें बनवाईं और सैकड़ों उद्यान लगवाए। हस्पताल भी उस ने कई खुलवाए । उसको इमारतों से भी बड़ा प्रेम था, अतः उस ने अनेक मसजिदें और महल बनवाए। उसका राज्य साधारण दया का राज्य था।

जो सूबे मुहम्मद तुग़लक के समय स्वतन्त्र हो गये थे, उन्हें अपने अधीन करने का उसने यत्न किया, पर इस में वह असफल रहा। फीरोज की सेना भी पर्याप्त थी। सेना के अफसरों को जागीरें दे कर वह प्रसन्न रखता था।

फीरोज कुरान के अनुसार शासन करता था । इसलिए हिन्दुओं पर उसे कई कठोरताएँ करनी पड़ीं। वह मुसलमानों से इतना प्रेम करता था कि युद्ध में उनका रक्त गिराने से वह डरता था। इसीलिए महान् योद्धा न हो सका।

मृत्यु—सन् १३८८ में फीरोज की मृत्यु हुई। वह उस समय ७६ वर्ष का था।

फीरोज की मृत्यु के पश्चात् मुसलमानी साम्राज्य और भी क्षीण होता गया। एक ओर राजपूत अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे और दूसरी ओर कई मुसलमान सरदार साम्राज्य के सूबों को स्वयं सँभाल रहे थे।

मेवाड़ का उत्थान—राजपूताना में सीसोदे की एक छोटी सी जागीर थी। चौदहवीं शताब्दी के प्रथम पाद के अन्त में उस का अधिकारी हम्मीर नाम का एक वीर राजपूत था । वह पुराने गुहिल वंश से सम्बन्ध रखता था । उसके हृदय में यह कामना उत्पन्न हुई कि अपने पूर्वजों के पुराने राज्य का उद्धार करना चाहिए।

हम्मीर का उदय—उन दिनों दिल्ली में सुलतान अलाउद्दीन राज्य करता था। उस के राज्य के अन्तिम वर्ष जा रहे थे। सन् १३१६ में अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् गयासुदीन का राज्य भी थोड़े वर्ष ही रहा। फिर सन् १३२५ में मुहम्मद तुगलक दिल्ली का बादशाह बना। दिल्ली के बादशाहों ने चित्तौड़ का प्रदेश मालदेव के अधिकार में दिया हुआ था। हम्मीर ने मालदेव के कई नगर अपनी जागीर में मिला लिए। मालदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जेसा मुसलमानी साम्राज्य का राजपूताने का नायब था। इसी जेसा के काल में सन् १३२६ के लगभग हम्मीर ने चित्तौड़ को भी प्राप्त कर लिया। तदनन्तर उस ने सारे मेवाड़ पर अपना प्रभुत्व जमाया और गुहिल वंश की सीसोदिया शाखा का राज्य मेवाड़ में स्थापित कर दिया। हम्मीर ने अपना राज्याभिषेक किया और 'महाराणा' पद धारण किया। मेवाड़ के राजा अब तक यह पद धारण करते हैं, और वही सीसोदिया वंश आज तक स्थिर है। वर्तमान काल में उत्तर भारत का वस्तुत: यही एक हिन्दू राज्य है, जिसकी परम्परा बहुत पुरानी है।

सन् १३६४ में महाराणा हम्मीर की मृत्यु हुई। उस ने अपने अनथक प्रयत्नों से राजपूताना में एक दृढ़ हिन्दू राज्य स्थापित कर दिया। इस राज्य का जो संघर्ष दिल्ली के बादशाहों से हुआ उसका वृत्तान्त समय पर लिखा जायगा।

सन १४३३ में चित्तौड़ की राजगद्दी पर महाराणा कुंभकरण (कुंभा) बैठा। इस का मालवे के सुलतान महमूद के साथ एक महान् युद्ध हुआ। कहते हैं इस युद्ध में महाराणा की सेना एक लाख के लगभग थी। सुलतान हार गया और अपने देश की ओर

भागा। महाराणा ने वहाँ जाकर उसे कैद कर लिया और कुछ मास पश्चात् छोड़ दिया। मुसलमान ऐतिहासिक महाराणा की दो एक छोटी हारों का भी वर्णन करते हैं, परन्तु महाराणा ने जो अपना कीर्तिस्तम्भ स्थापित किया था, उस में लिखा है—"यह महाराणा मेवाड़ के इतिहास में वहुत प्रसिद्ध हुआ है । कुंभकर्ण ने गुजरात के सुलतान की हँसी करते हुए नागौर ले लिया। फ़ीरोज़ की वनवाई हुई ऊँची मस्जिद को जलाया, दुर्ग को तोड़ा, खाई को भर दिया, हाथी छीन लिए, यवनियों को कैद किया और असंख्य यवनों को दण्ड दिया। यवनों से गौओं को छुड़ाया, नागौर को गोचर बना दिया, नगर को मसजिदों सहित जला दिया और शम्सखाँ के खज़ाने से विपुल रत्न-संचय छीना।" संभव है इस लेख में कुछ अत्युक्ति हो, पर अधिकांश भाग सत्य होगा।

अनेक ऐतिहासिकों ने लिखा है कि भक्ति-धारा की प्रसिद्ध प्रचारिका मीरावाई महाराणा कुंभा की स्त्री थी। यह एक भूल है। मीरावाई महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की स्त्री थी।

तैमूर का आक्रमण—फीरोज़ को मरे १० वर्ष हो चुके थे। इतने थोड़े काल में दिल्ली के राज्य के लिए अनेक झगड़े हुए और अनेक ही वादशाह वने । सन् १३६८ में महमूद तुगलक दिल्ली का वादशाह था।

प्रसिद्ध वौद्ध चंगेज़खाँ का पहले वर्णन हो चुका है। चौदहवीं शताब्दी के अन्त में उसी के वंश में तैमूर नाम का एक प्रसिद्ध विजेता हुआ। वह मुसलमान था । मध्य-एशिया में तैमूर के राज्य का वड़ा विस्तार हो गया था। वह भारत की दशा से भी अनभिज्ञ न था। दिल्ली-साम्राज्य की जीर्ण अवस्था को सोच

कर उस ने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। सन् १३९८ में ७० वर्ष की आयु में वह समरकन्द से चला। मार्ग के नगर और ग्राम उस ने जला दिए। जन-संहार का तो कहना ही क्या है। तैमूर जहाँ से गुज़रा, वहाँ कत्ले-आम कराता गया। न जाने कितने लाख स्त्री-पुरुष उसने कत्ल कराए। पंजाब की भूमि उसके भय से काँप उठी। दिसम्बर में वह पानीपत पहुँच गया। मार्ग में उस ने एक लाख कैदी बनाए थे। यहाँ उसने उन सब को कत्ल करा दिया। उसे भय था कि युद्ध के समय ये कैदी शत्रु-दल से मिल जायँगे। तैमूर के पास कोई एक लाख के लगभग सेना थी। वह दिल्ली पहुँच गया।

दिल्ली की लूट—उधर महमूद तुग़लक लगभग पचास सहस्र सेना के साथ उस का सामना करने के लिए बाहर निकला। तैमूर की विजय हुई। बादशाह महमूद रणक्षेत्र से भाग गया। तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया। तीन दिन तक तैमूर के सिपाही दिल्ली को लूटते रहे। लाखों स्त्री-पुरुष क़त्ल हुए। दिल्ली की सारी सम्पत्ति तैमूर ने बटोर ली। दिल्ली से मेरठ और वहाँ से हरद्वार होता हुआ तैमूर समरकन्द को लौट गया।

आक्रमण के पश्चात्—दिल्ली की बादशाहत जो पहले ही अस्त-व्यस्त दशा में थी, अब सर्वथा क्षीण हो गई। दिल्ली का वैभव, दिल्ली की पहली-सी शान अब कहाँ थी! धन का तो वहाँ नाम भी न था। ऐसी दिल्ली के शासन को अब कौन मान सकता था? दिल्ली राज्य की सीमा दिल्ली और आगरा तक ही रह गई थी। तैमूर चला गया। दिल्ली में जो असाधारण नर-संहार हुआ था, उस की दुर्गन्धि के कारण वहाँ भयङ्कर महामारी फैल गई।

इस महामारी ने बचे खुचे लोगों के भी प्राण हर लिए। चारों ओर दुर्भिक्ष का साम्राज्य हो गया।

राजपूताना आदि में हिन्दू राजा अपनी स्वतन्त्रता स्थिर कर ही चुके थे। कई मुसलमान सूबेदार भी अपने अपने सूबों को सँभाल चुके थे। गुजरात से आकर महमूद ने सन् १४०४ में दिल्ली का जीर्ण राज्य ले लिया। वह सन् १४१३ तक जीता रहा। उस का राज्य दिल्ली तक ही सीमित था।

पच्चीसवाँ अध्याय

सैयद और लोदी वंश

सैयद वंश—आक्रमण करता हुआ तैमूर जब मुलतान पहुँचा था, तो वहाँ के हाकिम ने उस की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मुलतान के हाकिम का नाम सैय्यद ख़िज़रखाँ था। दिल्ली की लूट में वह तैमूर का सहायक था। सन् १४१४ में वह दिल्ली का बादशाह बन बैठा। वह कोई विशेष काम न कर सका और सन् १४२१ में मर गया। ख़िज़रखाँ के वंशज बड़े निर्बल थे। उन का अन्तिम पुरुष आलमशाह था।

उन्हीं दिनों अफ़ग़ानों ने पंजाब में अपना बल खूब बढ़ा लिया था। लाहौर और सरहिंद का हाकिम एक बहलोल लोदी था। उसने आलमशाह को राजगद्दी छोड़ने पर विवश कर दिया।

लोदीवंश—बहलोल—सन् १४५१ में बहलोल दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इस से पूर्व दिल्ली का राज्य तुर्कों के अधीन था। लोदी से अफ़ग़ान राज्य का उदय हुआ।

वहलोल एक शक्तिशाली और सहृदय वादशाह था । वह विद्वानों का आदर करता था और अपने नौकरों से सौजन्यता का व्यवहार करता थां । दिल्ली-राज के कई नष्ट प्रदेश उसने जीत लिए और दिल्ली की खोई हुई शक्ति को वहुत कुछ एकत्र किया। वहलोल लगभग ३७ वर्ष राज्य करके सन् १४८८ में मर गया।

सिकन्दर लोदी—सन् १४८८ में वहलोल का पुत्र सिकन्दर दिल्ली के राजसिंहासन का स्वामी वना । सिकंदर एक वीर और साहसी वादशाह था। विहार, तिरहुत और वंगाल के प्रदेश उसने अपने अधीन कर लिए । सिकंदर लोदी ने नगरकोट के राजा रामचंद्र से कई युद्ध किए, पर वह उसे अपने अधीन न कर सका। सिकंदर के काल में आगरे के प्रदेश में एक भारी भूकम्प आया। इस भूकम्प से मकान और जन-नाश वहुत हुआ। सिकंदर अच्छा शासक पर पका मुसलमान था । उस ने अनेक मंदिर तुड़वा कर उनके स्थान पर मसजिदें वनवाईं । सिकंदर का राज्य-काल २८ वर्ष था।

इब्राहीम लोदी—सन् १५१७ में इब्राहीम ने अपने पिता का स्थान लिया। इब्राहीम का अभिमान वहुत वढ़ गया। वह अपने सरदारों को तंग करता था । अफ़ग़ान सरदार भला यह कव सह सकते थे। उस समय पंजाव का हाकिम दौलतखाँ लोदी था। उसने कावुल के वादशाह वावर को भारत पर चढ़ाई करने का निमंत्रण दिया।

छब्बीसवाँ अध्याय

हिंदुओं में नवीन धार्मिक धाराएँ

इस्लाम और हिन्दू—मुसलमानों से पहले जितनी जातियाँ समय समय पर भारत में आईं, उन सब ने शनैः शनैः हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया। कई लोग बौद्ध हो गए, कई वैष्णव और कई शैव। जो लोग पहले बौद्ध हुए वे भी पीछे से हिन्दू ही बन गए। मुसलमान जाति अपने नए संस्कारों के साथ भारत में आई। मुसलमानों ने यहाँ का धर्म स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। हिन्दू निम्नलिखित कारणों से मुसलमान हुए।

१—छोटी जातियों के हिन्दू बहुत मुसलमान हुए। वे हिन्दू धर्म में कई प्रकार के कष्ट अनुभव करते थे।

२—अनेक मुसलमान बादशाह बड़े धर्मान्ध थे वे हिन्दुओं पर कड़ाई करते थे, इसलिए साधारण हिन्दू मुसलमान हुए।

३—जज़िया कर की कड़ाई न सहकर भी कई हिन्दू मुसलमान हुए।

४—युद्धों में जीतने पर मुसलमान सैनिक पुरुषों को क़त्ल कर देते थे और स्त्रियों को अपने घरों में रख लेते थे। इस प्रकार लाखों ही स्त्रियाँ अनायास मुसलमान हुईं।

५—युद्धों के पश्चात् जो हिन्दू मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लेते थे, उन्हें क़त्ल नहीं किया जाता था। इस प्रकार प्राणरक्षा के लिए भी सहस्रों हिन्दू मुसलमान बने।

६—आर्य-धर्म की पुरानी उदारता, सजीवता और आकर्षण

बहुत कम हो गए थे। हिन्दू अपने धर्म के गौरव को भूल रहे थे, इसलिए भी कई लोग मुसलमान हुए।

ऐसी दशा में हिन्दू धर्म कब तक सोया रह सकता था? इस धर्म में एक परिवर्तन हुआ और नई धार्मिक धाराएँ चल पड़ीं। इनमें सबसे मुख्य धारा भक्ति की थी। भक्ति का अनुसरण करने वाले केवल परमात्मा से प्रीति करने का उपदेश करते थे। उनके समीप हिन्दू-मुसलमान सब एक थे। परमात्मा और अल्लाह में भी कोई भेद न था। ब्राह्मण और नीचतम पुरुष भी ईश्वर के दरबार में एक समान थे। जात-पात का भेद-भाव भक्ति मार्ग में नहीं था। यह भेद-भाव राजनीतिक कारणों से हटने लगा। यही कारण है कि उत्तर भारत में जात-पात का उतना टंटा नहीं है, जितना कि दक्षिण के प्रदेशों में। वहाँ मुसलमानों का उतना प्रभाव नहीं था जितना उत्तर भारत में था। इसलिए मुसलमानों के प्रभाव को दूर करने के लिए ही छोटे बड़े को एक समान समझने वाली धारा उत्तर भारत में ही चली।

रामानन्द—रामानुज आचार्य दक्षिण के महान् सुधारकों में से एक थे। स्वामी रामानन्द उन्हीं के सम्प्रदाय के साधु थे। वे वैष्णव धर्म में अटूट श्रद्धा रखते थे और सदा राम-भक्ति में लीन रहते थे। रामानन्द ने नीच जाति के सहस्रों लोगों को अपने मत की दीक्षा दी। उनके समीप चाण्डाल और ब्राह्मण एक ही भगवान् के अङ्ग थे। रामानन्द जी के प्रसिद्ध शिष्यों में नाई और चमार भी हैं। रामानन्द जी विद्वान भी थे। वेदान्त दर्शन आदि कई संस्कृत ग्रन्थों पर उन्होंने अपनी टीकाएँ रची हैं। परन्तु वे अपना प्रचार हिन्दी में ही करते थे। इन का सम्प्रदाय संयुक्त प्रान्त में बहुत उन्नत हुआ। भक्तों का एक ताँता-सा बँध गया।



गुरु नानक

उन्हीं २५० प्रसिद्ध भक्तों की जीवनियाँ नाभा जी ने अपने "भक्त-माल" नामक ग्रन्थ में लिखी हैं। वैष्णव लोग इस ग्रन्थ को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं।

कबीर—भक्त कबीर पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए। ये रामानन्द के शिष्यों में से थे। संत कबीर की वाणी बड़ी प्रसिद्ध है। कबीर अद्वैत-वाद का उपदेश देते थे। जात-पात के तो वे बहुत विरुद्ध थे। हिंदू और मुसलमानों को मिलाने का इन्होंने बहुत प्रयत्न किया। अनेक मुसलमान भी इनके शिष्य बन गए। ये संस्कृत विद्या नहीं जानते थे। मूर्ति-पूजा का भी बड़ा कड़ा खण्डन किया करते थे। मन्दिर और मस्जिद दोनों का भाव हटा कर एक ईश्वरोपासना का उपदेश इनका प्रधान कर्तव्य था।

गुरु नानक—नानक जी का जन्म सन् १४६९ में हुआ। जिस समय संयुक्त प्रान्त में उपर्युक्त महापुरुष अपना सन्देश दे रहे थे, उसी समय पंजाब में गुरु नानक प्रसिद्ध हो रहे थे। गुरु नानक अद्वैत का उपदेश देते थे और मूर्ति-पूजा का खण्डन करते थे। भक्ति की धारा का प्रसार करने में वे और कबीर समान थे। जात-पात का आडम्बर उनकी दृष्टि में भी निरर्थक था। ये हृदय की स्वच्छता, सेवा, भक्ति और सत्संग पर बड़ा बल देते थे। इन्होंने गुरुओं का एक क्रम चलाया और अपना उत्तराधिकारी एक गुरु बनाया। इसी गुरु-क्रम से अन्त में सिक्ख धर्म बना।

वल्लभाचार्य—वल्लभ स्वामी का जन्म सन् १५७९ के आस पास हुआ। इन्होंने एक वल्लभ सम्प्रदाय चलाया। संस्कृत विद्या में ये अच्छे निपुण थे। भगवान् कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते थे। कृष्ण भक्ति पर इन की असीम श्रद्धा थी। इसी का उपदेश वे शिष्यों को करते थे। आचार्य वल्लभ तपस्या के स्थान में भक्ति

पर वल देते थे। इन का सम्प्रदाय मथुरा, गुजरात और बम्बई में बहुत फैला।

चैतन्य—चैतन्य महाप्रभु का नाम बङ्गभूमि का बच्चा-बच्चा जानता है। चैतन्य का जन्म सन् १४८५ में हुआ। चैतन्य भी वैष्णव और कृष्णोपासक थे। जात-पात के वे भी कट्टर विरोधी थे। अनेक नीच जाति के मनुष्य उनके शिष्य बने। उनकी कृपा से बंगाल में वैष्णव धर्म का अच्छा प्रचार हुआ।

इन सब धार्मिक गुरुओं ने जात-पात पर पूरा कुल्हाड़ा चलाया और भक्ति-मार्ग का भरपूर उपदेश दिया। जो नीच जाति के लोग धड़ाधड़ मुसलमान हो रहे थे, वे इनके उपदेश से हिन्दू ही रहे। यही नहीं, इनकी असीम भक्ति के प्रभाव से अनेक मुसलमान भी इनके शिष्य हो गए। दूसरी ओर भक्ति-धारा का प्रवाह बहाकर इन्होंने धर्म को सरल कर दिया। कठिन यज्ञ जो मुसलमानी राज्य में असम्भव थे, लोगों को आकर्षित नहीं कर सकते थे। इस लिए भक्ति के मार्ग द्वारा ईश्वर-प्राप्ति का मन्त्र चल गया। हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ी। संस्कृत विद्या का ह्रास तो हुआ, पर हिन्दू धर्म वच गया।

सत्ताईसवाँ अध्याय

मुग़ल-साम्राज्य

पुराने मंगोल ही मुगल नाम से पुकारे जाते हैं। चंगेज़खाँ के कुछ काल पश्चात् मंगोल लोग मुसलमान हो गए थे। तैमूर भी इसी वंश का था। मुगल साम्राज्य के टूटने पर उसकी अनेक

शाखाएँ हो गई थीं। उनमें से फ़रग़ाना की रियासत भी एक थी। बाबर इसी रियासत का राजा और तैमूर-वंश में से था।

बाबर—(सन् १५२६—१५३०)—ग्यारह वर्ष की अवस्था से ही बाबर अपनी रियासत सँभाल रहा था। अपने प्रारम्भिक जीवन में बाबर के अपने सम्बंधियों से अनेक युद्ध हुए। सन् १५०४ में उसने काबुल का राज्य सँभाल लिया। काबुल को ले कर उस के मन में भारत पर चढ़ाई करने का विचार आया। सन् १५२१ में बाबर स्यालकोट तक आया, पर उसे अधिक सफलता नहीं हुई। सन् १५२३ में पंजाब के हाकिम दौलतखाँ लोदी ने दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए उसे निमंत्रण दिया। बाबर थोड़ी सी सेना ले कर लाहौर पहुँचा, पर दौलतखाँ अपने वचन से फिर गया। बाबर भी बहुत सा लूट का माल ले कर काबुल चला गया।

पानीपत का पहला युद्ध—२१ एप्रिल सन् १५२६ को पानीपत के विशाल क्षेत्र पर इब्राहीम लोदी और बाबर का मुकाबला हुआ। इब्राहीम के साथ एक लाख सेना थी। कई हिंदू राजा भी उसकी सहायता कर रहे थे। काङ्गड़े के वीर राजपूत भी अपने राजा रामचंद्र के साथ इब्राहीम का साथ दे रहे थे। बाबर के पास केवल बारह सहस्र सेना थी। पर उस के पास तोपखाना था। बाबर ने जब तोपखाने से काम लिया तो इब्राहीम की सेना में खलबली पड़ गई। बादशाह युद्ध की भेंट हुआ। सहस्रों सैनिक भी रणक्षेत्र में ही काम आये। बाबर ने दिल्ली में प्रवेश किया। कुछ दिन पश्चात् ही बाबर ने आगरा भी ले लिया और उस के हाथ बहुत धन लगा।

महाराणा सांगा या संग्रामसिंह—सांगा का जन्म सन्

१४८२ में हुआ। सन् १५०६ में उसका अभिषेक हुआ । मेवाड़ के महाराणाओं में से वह सबसे अधिक प्रतापी हुआ है। वह अपने समय का सबसे प्रबल हिंदू राजा था । महाराणा ने गुजरात के सुलतानों और सुलतान इब्राहीमलोदी से कई युद्ध किए थे। इब्राहीम के साथ उसका युद्ध सन् १५१७ में खातोली ग्राम के पास हुआ। बादशाह भाग गया और राजकुमार कैद हो गया। इस युद्ध में महाराणा का बांया हाथ कट गया था और घुटने पर तीर लगने के कारण वह लँगड़ा हो गया था।

महाराणा सांगा और बाबर—बाबर महाराणा के बल को जानता था। इसलिए महाराणा के साथ युद्ध करने से पहले उसने अपनी शक्ति को एकत्र करना ठीक समझा। बाबर ने ग्वालियर आदि कई दुर्ग अपने अधिकार में कर लिए। महाराणा सांगा भी आगे बढ़ा। बाबर स्वयं लिखता है कि महाराणा के वेग का कोई ठिकाना न था। क्षणभर में वह कहीं का कहीं पहुँच जाता था। महाराणा ने पहले बयाना ले लिया। फरवरी सन् १५२७ को बाबर आगरे के पास अपनी सेना एकत्र कर रहा था। आसपास के जल के स्थानों की रक्षा का वह प्रबन्ध कर लेना चाहता था। फरवरी २२ सन् १५२७ को बाबर का सेनापति खानवा तक आ पहुँचा। महाराणा ने उस पर आक्रमण कर दिया । बाबर ने भी अपने सेनापति की सहायता के लिए बड़ी सेना भेजी। राजपूतों ने युद्ध जीत लिया। बाबर के कई बड़े-बड़े अफसर मारे गये। बाबर अपनी तोपों को भी साथ ला रहा था।

महाराणा की तीव्र गति से मुग़ल बड़ा घबराते थे। बाबर स्वयं लिखता है—"मेरी सेना के छोटे बड़े सभी भयभीत हो रहे थे।" बाबर बड़ा बेचैन था। उसने अनेक पाप किए थे । उसने सोचा

कि अब उन पापों के प्रायश्चित्त का समय है। उसने शराब के प्याले तोड़ दिए और मद्यपान छोड़ दिया। कई बार हार हार कर बाबर अधिक साहसी हो गया था। उसने अपनी सेना में जोश-भरी वक्तृता दी। अपने सैनिकों का साहस बढ़ा कर वह युद्ध की अधिक तय्यारी करने लगा। साथ ही उसने सन्धि की बात छेड़कर युद्ध में देर लगा दी। महाराणा को यह देर महँगी पड़ी। इतनी भारी राजनीतिक भूल करने वाला महाराणा कोई बड़ा नीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता। महाराणा की सेना कोई एक लाख थी और बाबर की सेना भी कम न थी।

फतहपुर सीकरी के पास १७ मार्च सन् १५२७ को सवेरे ९½ बजे युद्ध आरम्भ हुआ। पहले तो राजपूत जीत रहे थे। पर अन्त में तोपखाने ने उन्हें पिछाड़ा। सांगा बहुत ज़ख्मी हुआ। बाबर ने विजय प्राप्त की।

महाराणा सांगा की हार से राजपूतों का वह अदम्य ऐश्वर्य जो राणा कुंभा के काल से बढ़ ही रहा था, मंद पड़ गया। कहते हैं, राजपूताना का कोई घर ऐसा न था जिस का एक न एक व्यक्ति इस युद्ध में मारा न गया हो। मुगल साम्राज्य भारत में स्थिर हो गया।

बंगाल विजय—सन् १५२९ में विजय प्राप्त करके बाबर ने बिहार और बंगाल अपने अधीन कर लिए।

मृत्यु—बाबर लड़ाई पर लड़ाई कर रहा था। इस घोर परिश्रम के कारण उस का स्वास्थ्य ढीला पड़ गया। सन् १५३० में उसका पुत्र हुमायूँ रोगी हो गया। हकीम लोगों ने रोग असाध्य बताया। बाबर को अपने पुत्र से बड़ा प्रेम था। बाबर ने अपने रोगी पुत्र की शय्या की तीन बार परिक्रमा की और ईश्वर से प्रार्थना की, कि पुत्र का रोग मुझे लग जाए। आश्चर्य की बात

है कि हुमायूँ अच्छा होने लगा और बाबर का रोग अधिक होता गया। २६ दिसम्बर सन् १५३० को आगरे में बाबर की मृत्यु हुई।

बाबर को अपने राज्य के प्रबन्ध करने का अधिक समय नहीं मिला। वह युद्धों में ही लगा रहा। उसने अपने अफसरों को कई जागीरें दीं और हिमालय से मालवा तक तथा काबुल से बंगाल तक अपने राज्य का विस्तार किया।

हुमायूँ (सन् १५३०–१५५६)—अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् हुमायूँ राज-सिंहासन पर बैठा। हुमायूँ के तीन भाई और थे—कामरान, हिन्दाल और मिर्ज़ा असकरी। मरते समय बाबर ने हुमायूँ से कहा था कि अपने भाइयों को कष्ट न देना। अनेक दुःख सहन करके भी हुमायूँ ने अपने पिता की यह इच्छा पूरी की। कामरान पंजाब और काबुल का सूबेदार था और हिन्दाल और असकरी भारत में ही थे।

कामरान हुमायूँ से बड़ा द्वेष रखता था। इस द्वेष के कारण उसने हुमायूँ के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दीं। हुमायूँ को सेना की बड़ी आवश्यकता थी, परन्तु वह काबुल की ओर से कोई सेना भरती नहीं कर सकता था। कामरान काबुल में स्वतन्त्र हो गया।

अफगानों से युद्ध—घाघरा के युद्ध में परास्त हो कर अफगान शान्त नहीं हुए। सन् १५३१ में महमूद लोदी की अध्यक्षता में उन्होंने लखनऊ के समीप एक युद्ध किया। इस में अफ़गानों की हार हुई। इस के पश्चात् अफ़गान बिहार के शासक शेरखाँ के झण्डे तले एकत्र हुए। इस शेरखाँ ने १५३२ में हुमायूँ की अधीनता मान ली।

गुजरात में बहादुरशाह के साथ युद्ध—बहादुरशाह एक अच्छा शासक था। वह दिल्ली का राज्य लेने की इच्छा कर रहा था। मालवा और चित्तौड़ उसने हस्तगत कर लिए थे। दिल्ली से भागे हुए लोगों की वह सहायता करता था। बाबर अपने जीवन-काल में गुजरात के अफ़गानों को अपने अधीन नहीं कर सका। बहादुरशाह का राज्य पूर्व में बरार तक जा पहुँचा था। जब हुमायूँ ने बहादुरशाह की तय्यारी का हाल सुना तो उस ने तत्काल गुजरात पर चढ़ाई कर दी। मन्दसौर के पास लड़ाई हुई। बहादुरशाह भाग गया और मालवे का प्रदेश सहज में ही हुमायूँ के अधिकार में आ गया।

बंगाल पर चढ़ाई—जब हुमायूँ गुजरात में था, तब शेरखाँ ने सिर उठाया। हुमायूँ को शीघ्र ही आगरे की ओर लौटना पड़ा। उस के लौटते ही बहादुरशाह ने सारा मालवा फिर अपने अधीन कर लिया। उधर शेरखाँ अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। शेरखाँ ने बंगाल के सब दुर्ग अपने अधीन कर लिए और अपनी शक्ति बढ़ा ली।

शेरखाँ—शेरखाँ अपने बाल्य-काल में फ़रीद के नाम से प्रसिद्ध था। फ़रीद विद्या-रसिक और असाधारण बुद्धि रखता था। एक शेर को मार देने से लोग इसे शेरखाँ कहने लगे थे। सन् १५२८ में वह बाबर के दरबार में आया। होनहार समझ कर बाबर ने उसे बिहार में एक अच्छा पद दिया। शेरखाँ चुपचाप अपनी शक्ति बढ़ाता रहा और बाबर के मरते ही वह बहुत प्रबल हो गया। पहले उसने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार कर ली, पर अन्दर ही अन्दर अपनी तैयारी करता रहा। सन् १५३९ में गङ्गा-तट पर चौसा के समीप उस का शाही सेना से मुकाबला

हुआ। बादशाह की सेना हार गई। बादशाह भागा और प्राणरक्षा के लिए गङ्गा में जा कूदा। वह निश्चय ही मर जाता यदि निज़ाम मुहम्मद सक्का उसे न बचाता। हुमायूँ अपने प्राण-रक्षक का बड़ा कृतज्ञ था। उसने दो दिन के लिए उसे बादशाह भी बना दिया था।

कन्नौज के पास शेरखाँ से युद्ध—हुमायूँ ने आगरा पहुँच कर नई सेना एकत्र की। शेरखाँ ने कन्नौज तक का प्रदेश अपने अधीन कर लिया था। सन् १५४० में कन्नौज के समीप शेरखाँ और हुमायूँ दोनों आमने सामने हुए। हुमायूँ फिर हार गया। हुमायूँ आगरे को भागा। वहाँ से वह लाहौर आया। लाहौर से उस ने मारवाड़ की ओर कूच किया। इन सब स्थानों पर उसे कहीं भी सहायता न मिली।

सम्राट् अकबर का जन्म—भटकता भटकता हुमायूँ मरुभूमि को लाँघता हुआ अमरकोट पहुँचा। यहीं पर सन् १५४२ में उस के एक पुत्र हुआ। यही पुत्र भारतीय इतिहास में अकबर के नाम से प्रसिद्ध है।

शेरशाह सूर (सन् १५४०–१५४५)—हुमायूँ के भाग जाने के कारण शेरशाह ने दिल्ली में पुनः अफ़गाण राज्य की स्थापना की। वह एक वीर योद्धा था। राज्य लेते ही उसने पंजाब और बङ्गाल में शान्ति स्थापित की। फिर अगले वर्ष उसने मालवा ले लिया। मारवाड़ के राजा मालदेव को भी उसने हराया। सन् १५४५ में शेरशाह मर गया।

शेरशाह का शासन—शेरशाह केवल लूटने वाला बादशाह ही न था। उस ने अपने छोटे से राज्य-काल में अनेक सुधार किए। उन में कुछ नीचे लिखे जाते हैं।

१. भूमि का प्रबन्ध—टोडरमल नाम का एक बड़ा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। उसकी सम्मति से उसी के द्वारा शेरशाह ने सारी भूमि का माप कराया। उसी माप के अनुसार किसानों पर लगान लगाया गया। किसानों को उपज का तीसरा भाग राज्य को देना पड़ता था।

२. रिश्वत—राज-कर्मचारियों का रिश्वत लेना रोक दिया गया और इस विषय की कड़ी देख-रेख की जाती थी।

३. हिन्दू-मुसलमान—यह पहला मुसलमान सम्राट् था जिसने हिन्दू-मुसलमानों का भेद कम किया।

४. दण्ड—शेरशाह का दण्ड-चक्र बड़ा कठोर था, पर था सब के लिए एक समान। साधारण अपराध पर हाथ-पैर काट दिये जाते थे। पुलीस का प्रबन्ध अच्छा था।

५. सेना—शेरशाह ने स्थायी सेना बनाई। सेना को वेतन नियमित मिलता था। अनेक हिन्दू भी उसकी सेना के अफसर थे। उसकी सेना में पचास सहस्र पदाति, पचीस सहस्र अश्वारोही और पाँच सहस्र हाथी थे।

६. सड़कें—शेरशाह का एक बड़ा भारी काम सुन्दर सड़कों का बनवाना था। आगरा और दिल्ली से उसने पेशावर तक एक सड़क बनवाई। यह सड़क अभी तक शाही सड़क के नाम से प्रसिद्ध है। सड़कों पर अनेक सराएँ भी बनाई गईं। इनसे पथिकों को बहुत आराम मिलता था।

चरित्र—शेरशाह मुसलमानी काल के भारत के चुने हुए सम्राटों में से एक था। वह एक योग्य, वीर और बुद्धिमान व्यक्ति था। अपराध करने पर वह मौलवियों को भी दण्ड देता था। उसने हिन्दुओं को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की थी। जज़िया बिना कष्ट

दिए प्राप्त किया जाता था। शेरशाह सब राजकीय विभागों का प्रबन्ध अपनी देख रेख में करता था। वह दान-वीर भी बहुत था।

उत्तराधिकारी—सन् १५४५ में शेरशाह का देहान्त हो गया। उसका पुत्र सलीमशाह सन १५५४ तक राज्य करता रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् सूर राज्य निर्बल हो गया। स्थान-स्थान पर विद्रोह उठ खड़े हुए।

हुमायूँ का लौटना—अकबर के जन्म के पश्चात् हुमायूँ फारस को चला गया। वहाँ के शाह से उसने मित्रता कर ली। उससे १२ सहस्र सवार लेकर वह काबुल को आया। कामरान ने उसका मुकाबला किया, पर हार गया।

कुछ ही दिनों में सारे अफ़गानिस्तान को हुमायूँ ने अपने अधीन कर लिया। उस समय तक सूर-वंश के टुकड़े टुकड़े हो गये थे। सन् १५५४ में १५ सहस्र सवार लेकर हुमायूँ लाहौर पर चढ़ आया और उसने लाहौर विजय कर लिया। सन १५५५ में वह दिल्ली की ओर बढ़ा। सरहिन्द पर सूर बादशाह ने उसका मुकाबला किया पर हार कर भाग गया। हुमायूँ सीधा दिल्ली पहुँचा और १५ वर्ष पश्चात् उसने अपना राज्य फिर ले लिया।

मृत्यु—जनवरी सन् १५५६ में हुमायूँ अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था। उसका पैर फिसला और वह गिर कर मर गया।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

अकबर

सम्राट् अकबर (सन् १५५६-१६०५)—हुमायूँ के पश्चात् उसका पुत्र अकबर बादशाह बना। अकबर उस समय केवल १३ ही वर्ष का था। जब अकबर ने राज्य सँभाला तो भारत के अनेक भाग स्वतन्त्र हो चुके थे। अफ़ग़ानों की सत्ता कुछ न कुछ बनी हुई थी। बिहार, बङ्गाल, खानदेश, जौनपुर और सिन्ध अफ़ग़ानों के अधीन थे। उधर राजपूताना में मेवाड़ और जोधपुर आदि के प्रदेश स्वतन्त्र हो चुके थे। दक्षिण भारत पर मुग़लों का कोई अधिकार न था। गुजरात बहादुरशाह के अधिकार में चला गया था।

हेमूँ—अकबर अभी बालक था, उस के राज्य का काम बैरमखाँ करता था। सूर वंश के लोग अपना राज्य लौटा लेने की चिन्ता में थे। मुहम्मद आदिलशाह अपना सिर उठा रहा था। उसका सचिव और प्रधान सेनापति हेमूँ नाम का एक बनिया था। हेमूँ पहले रिवाड़ी में दुकान करता था। उन्नति करते करते वह आदिलशाह का प्रिय बन गया। हेमूँ ने एक सेना एकत्र कर ली और दिल्ली तथा आगरा का स्वयं स्वामी बन बैठा। उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण करली। हेमूँ वीर और चतुर सेनापति था, पर अपनी सेना के हाथियों पर निर्भर रहने की भूल उसने भी की।

पानीपत का दूसरा युद्ध—हेमूँ १५०० हाथी और भारी सेना लेकर पानीपत के रणक्षेत्र में आ उतरा। अकबर के सरदार पहले तो उसे भारत छोड़ने को कहते रहे, पर अकबर के न मानने पर युद्ध के लिए तय्यार हो गए। बैरमखाँ सेना को तय्यार कर रहा था। ५ नवम्बर सन् १५५६ को यह युद्ध हुआ। हेमूँ की आँख में एक तीर लगा। वह अचेत हो गया। हेमूँ की सेना भागी। हेमूँ पकड़ा गया। बैरमखाँ ने उसे कत्ल करा दिया।

अब अकबर दिल्ली और आगरे का अधिकारी हो गया। परन्तु उसकी अवस्था अभी ढीली ही थी। वह भारत का सम्राट् नहीं था। पहले तीन वर्ष में अकबर ने कई युद्ध लड़े और अजमेर तथा ग्वालियर आदि देशों को उसने जीत लिया। कुछ ही दिनों में उसने जौनपुर भी अपने अधीन कर लिया। वह अफ़गानों का केन्द्र-स्थान था।

बैरमखाँ—बैरमख़ाँ का अधिकार और प्रभुत्व प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। कई सरदार इसको सह न सके। उन्होंने अकबर और बैरम के मध्य वैमनस्य उत्पन्न करा दिया। यह तनातनी इतनी बढ़ी कि बैरम भारत छोड़ने पर विवश हुआ। बैरम मक्के की ओर चल पड़ा। मार्ग में एक अफ़गान ने उसे मार डाला।

अकबर की कठिनाई—अकबर ने कई प्रदेश जीत लिए, पर उसका मार्ग सर्वथा निष्कण्टक नहीं बना था। अनेक अमीर और सरदार अभी तक उसके विरोधी थे। उनको अपने अनुकूल बनाए बिना शान्त साम्राज्य असम्भव था। इसलिए अकबर इस ओर पूरा ध्यान दे रहा था। दूसरी कठिनाई थी, भारत के अनेक

प्रान्तों की स्वतन्त्रता। अकबर चाहता था कि एक बार सारा भारत उसके अधीन हो जाए। और तीसरी बात थी प्रशान्त शासन की। दूसरी बात हुए बिना यह तीसरी बात नहीं हो सकती थी। इसलिए अंतिम दो बातों को हल करने की कठिनाई भी उसके सामने थी।

साम्राज्य-विस्तार के तीन युग—दूसरी बात को पूरा करने के लिए अकबर ने सतत प्रयत्न किया।

१. सन् १५५६-१५७६ तक उसने उत्तर भारत में विजय की।

२. सन् १५७६-१५९६ अफ़गानिस्तान की स्वतन्त्र जातियों को अधीन किया।

३. सन् १५९६-१६०४ दक्षिण-विजय।

इसी काल में उस ने साम्राज्य की सुव्यवस्था के भी अनेक उपयोगी उपाय किए।

मालवा—सन् १५३१-१५६४ तक अकबर मालवा पर आक्रमण के लिए सेना भेजता रहा। उस के हाकिम लूट-मार कर लेते थे, पर शाही कोश में धन नहीं भेजते थे। अन्त में सन् १५६४ में मालवा सर्वथा अधीन हो गया।

गोंडवाना—मालवा के अधीन होते ही लगे हाथ अकबर की सेना ने गोंडवाना जा घेरा। वहाँ का राजा वीरनारायण था। उसकी माता वीर राजपूतनी दुर्गावती थी। वीरता, बुद्धि और नीति में वह सुविख्यात थी। अकबर ने अकारण ही इस राज्य पर धावा बोला। राजपूत बड़े साहस से लड़े और रानी दुर्गावती अपने देश की रक्षा करते हुए रणक्षेत्र में मारी गई। गोंडवाना पर अकबर का राज्य हो गया।

राजपूतों से युद्ध—बादशाह अकबर राजपूतों को अपने

अधीन करके उन्हें अपना सहायक बनाना चाहता था । उस से पहले दिल्ली पर राज करने वाले सात राजवंशों ने ऐसा नहीं किया था । इसी लिए किसी वंश का राज १०० वर्ष तक भी न रहा। केवल मुसलमानों की सहायता से इस देश का राज्य स्थिर नहीं रह सकता था, यह बात अकबर जान गया । उसके चित्त में यह बात गड़ गई कि राजपूतों को सहायक बनाना चाहिए। —

चित्तौड़ पर चढ़ाई—साँगा का पुत्र उदयसिंह उस समय मेवाड़ का महाराणा था। सरदारों ने उदयसिंह को पर्वतों की ओर भेज दिया और दुर्ग की रक्षा के लिए ८००० राजपूत रह गए। एक बात राजपूतों ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता की की। राजपूताने की वह अथाह धनराशि जो महाराणा कुंभा के काल से एकत्र हो रही थी किसी गुप्त स्थान की ओर भेज दी गई । अब तो दुर्ग में वीर सैनिक ही थे। २३ अक्तूबर सन् १५६७ को अकबर ने चित्तौड़ के दुर्ग का घेरा डाला। दुर्ग की दीवारों में अनेक सुरंगे लगाई गईं, पर राजपूत उन्हें तत्काल भर देते थे । सुरंगे लगाना आसान काम न था। जहाँ सुरंग लगाने का यत्न किया जाता था, राजपूत वहीं गोली और तीर का निशाना बना कर सुरंग लगाने वालों को नष्ट कर देते थे । फिर भी अकबर का सुरंगों पर विश्वास था। यह काम जारी रहा । यदि कोई सुरंग सफल भी रहती तो राजपूत वहाँ तेल, रुई और बारूद जला कर शत्रु को अन्दर नहीं आने देते थे । इतने में ही वे फिर दुर्ग की दीवार को ठीक कर देते थे।

अन्त में दुर्ग की भोजन-सामग्री समाप्त होने लगी । वीर राठौर जयमल ने जौहर की अग्नि जलवाई । वीर देवियाँ और बच्चे धधकती अग्नि में कूद पड़े । इस अग्नि को देखकर अकबर



हिन्दूपति महाराणा प्रताप

ने पूछा—यह क्या है ? भगवान दास ने उत्तर दिया, जहाँपनाह ! कल भयङ्कर युद्ध होगा। राजपूतों ने जौहर की अग्नि जला दी है।

दूसरे दिन शाही सेना ने दुर्ग पर आक्रमण किया। राजपूतों ने दुर्ग-द्वार खोल दिए। वीर जयमल लँगड़ा हो गया था। उसे युद्ध की बड़ी कामना थी। वह एक सैनिक के कन्धे पर चढ़ा और घोर संग्राम करते हुए वीर-गति को प्राप्त हुआ। दुर्ग के एक एक द्वार पर अभूत-पूर्व संग्राम हुआ। राजपूतों ने अपना अन्तिम कर्तव्य पूरा किया। शरीर से उन्हें कोई प्रेम नहीं रहा था। वीर राजपूत वीसियों को मार कर मरे। २५ फरवरी सन् १५६८ को लगभग चार मास के पश्चात् अकवर चित्तौड़ के दुर्ग में प्रविष्ट हुआ, पर उसके हाथ कुछ न आया। न वहाँ स्त्रियाँ थीं और न सम्पत्ति।

महाराणा उदयसिंह का देहान्त २८ फरवरी १५७२ को हुआ।

महाराणा प्रताप—वीर शिरोमणि, प्रातःस्मरणीय, हिन्दूपति महाराणा प्रताप का जन्म ६ मई १५४० को हुआ। महाराणा उदयसिंह की दाह-क्रिया के समय ग्वालियर के राजा रामसिंह ने सुना कि उदयसिंह ने जगमल को अपना उत्तराधिकारी वना दिया है। वहाँ कई वुद्धिमान् सामन्त थे। उन्होंने कहा कि अकबर-सदृश सम्राट् दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ है, चित्तौड़ हाथ से जाता रहा है, मेवाड़ उजड़ रहा है, ऐसे आपत्ति के काल में तो उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र वीर प्रताप ही मेवाड़ का अधिकारी है। सारे सामन्त सहमत हो गए। वे घरेलू कलह वढ़ाना नहीं चाहते थे। सव ने एक मत होकर प्रताप का राजतिलक कर दिया।

आमेर के कुँवर मानसिंह का महाराणा प्रताप से मनोमालिन्य था। अकबर के दरवार में रहने से मानसिंह को बड़ा अभिमान था।

उसने अकबर से कहा कि महाराणा प्रताप को अधीन करना चाहिए। अकबर तो पहले ही इस बात की चिन्ता में था। एक बड़ी सेना देकर उसने मानसिंह को मेवाड़ की ओर भेजा।

भामाशाह—भामाशाह अत्यन्त नीति-निपुण मंत्री था। उसी की सम्मति से प्रताप सब काम करता था। राजपूताने के अतुल धन की गुप्त-स्थानों में रक्षा करने वाला यही अद्वितीय निःस्वार्थी पुरुष था। जब जब महाराणा को सेना की आवश्यकता पड़ती तभी तभी भामाशाह धन के ढेर लगा देता। न जाने वह कितना सच्चा देशभक्त था। जब वह मरने लगा तो उस ने अपनी स्त्री से कहा लो यह बही है, इसे अत्यन्त गुप्त प्रकार से महाराणा (अमरसिंह) को दे देना। इस में उन सब गुप्त स्थानों का ब्योरा है कि जहाँ हम ने मेवाड़ की सम्पत्ति छिपा रखी है। आर्य देवी ने अपने पति की अन्तिम इच्छा पूर्ण की। धन्य ऐसे वीर लोग कि जिनका मन इतनी अतुल सम्पत्ति भी नहीं बिगाड़ सकी।

हल्दीघाटी—यह प्रसिद्ध युद्ध हल्दी नाम की घाटी में हुआ। इसी युद्ध के कारण यह घाटी भारतीय इतिहास में एक तीर्थ-स्थान बन गई है। मानसिंह मुगल सेना को लेकर इसी घाटी में आ गया। उधर महाराणा प्रताप भी उससे तीन कोस दूर आ पहुँचा। वीर भामाशाह महाराणा के साथ था। मुसलमान ऐतिहासिकों ने इस युद्ध का वृत्तान्त बहुत अपूर्ण लिखा है। पर उनके लेखों से भी प्रकट होता है कि वे जीत नहीं सके।

जून सन् १५७६ को दोनों सेनाएँ एक दूसरे के सामने आईं। मानसिंह की सेना में ५००० और महाराणा के पास ३००० सवार थे। महाराणा अपने प्रसिद्ध घोड़े चेटक पर सवार था। मानसिंह एक हाथी पर सवार था। महाराणा ने घोर युद्ध किया और अपने

घोड़े को एड़ लगाई। घोड़े के अगले पाँव क्षण भर में मानसिंह के हाथी की सूँड पर थे। महाराणा ने बल-पूर्वक अपना बर्छा मानसिंह पर मारा। मानसिंह झुककर बच गया। हाथी की सूँड में एक तलवार थी। चेटक का पिछला पैर उस तलवार से ज़ख्मी हुआ। महाराणा ने समझा, मानसिंह मर गया, अतः उस ने अपने घोड़े को पीछे हटाया। सैकड़ों राजपूत और सहस्रों मुसलमान मारे गए। एक शिलालेख में लिखा है कि मुसलमान सेना पीछे हट गई। दोनों पक्ष वाले अपनी अपनी विजय प्रसिद्ध करते थे।

अकबर को वास्तविक सफलता न हुई। महाराणा जंगलों में रहता था। उसने मेवाड़ के सारे नाके बन्द कर दिए। किसानों के नाम आज्ञा जारी कर दी कि मैदानों की भूमि में जो कोई खेती करेगा उस का शिरच्छेद कर दिया जायगा। एक किसान ने मुसलमानी प्रोत्साहन से ऐसा किया। राणा स्वयं वेश बदल कर रात को आया और उसे क़त्ल कर गया। महाराणा की धाक बैठ गई। शाही सेना उसे ढूँढती फिरती थी। वह हाथ नहीं आता था। इसके विपरीत वह शाही सेना को बहुधा नष्ट कर के फिर पर्वतों में छिप जाता था। मेवाड़ उजाड़ हो गया। अकबर को मेवाड़ से कुछ नहीं मिला और न ही महाराणा उसके अधीन हुआ।

महाराणा की मृत्यु—१९ जनवरी १५९७ को ५७ वर्ष की आयु में महाराणा प्रताप का देहान्त हुआ। इस समाचार को सुन कर अकबर दुखी हुआ क्योंकि महाराणा प्रताप स्वाधीन ही मरा। महाराणा प्रताप की मृत्यु के पश्चात् उस के पुत्र अमरसिंह ने अकबर से सन्धि कर ली।

अकबर की गुजरात और बङ्गाल-विजय—सन् १५७३ में अकबर ने अहमदाबाद पर आक्रमण किया। शत्रु पराजित हुआ और अकबर ने गुजरात को दिल्ली के अधीन कर लिया। अभी अकबर लौट ही रहा था कि उसे सीकरी में गुजरात में पुन: विद्रोह होने की सूचना मिली। वह बड़ी सेना लेकर ६ दिन में अहमदाबाद पहुँचा। शत्रु फिर पराजित हुए और अब सूरत तक का प्रदेश अकबर के हाथ आया। सूरत आदि के बन्दर स्थानों का व्यापार अब उसके अधीन हो गया।

सन् १५७४ में अकबर ने बङ्गाल पर चढ़ाई की। सुलेमान का पुत्र दाऊद उस समय बङ्गाल का राजा था। युद्ध में दाऊद की हार हुई और वह भाग गया। दाऊद एक बार फिर उठा और सन् १५७५ के युद्ध में मारा गया। इस प्रकार बङ्गाल तक अकबर का साम्राज्य फैल गया।

काबुल पर चढ़ाई—अब अकबर ने अपनी पश्चिमोत्तर सीमा की ओर ध्यान दिया। सन् १५८१ में काबुल के मिर्जा हकीम ने पंजाब पर आक्रमण किया। अकबर ने पंजाब से होते हुए काबुल तक उस का पीछा किया और सितम्बर सन् १५८१ में स्वयं काबुल जा पहुँचा। सन् १५८५ में अकबर ने काबुल को अपने साम्राज्य की पश्चिमी सीमा बना लिया। सन् १५८६ में बलोच जातियों को वश में करते हुए अकबर के मित्र राजा बीरबल का देहान्त हुआ।

काबुल के साथ ही अकबर ने काश्मीर तथा सिन्ध को विजय किया। सन् १५९१ तक राजपूताना की पहाड़ियों को छोड़ कर अकबर कंदहार तक सारे उत्तर भारत का अधीश्वर हो गया।

दक्षिण-विजय—तुगलकों के समय में हसन गंगू द्वारा स्थापित बहमनी राज्य के खँडहरों पर पाँच मुसलमानी राज्य बन चुके थे। इनमें से अहमदनगर का निजामशाही राज्य और गोलकुंडा का कुतुबशाही राज्य प्रमुख थे। सन १५८६ में निज़ामशाही राज्य के उत्तराधिकारियों में परस्पर कलह होने लगा। गुजरात और मालवा से अकबर की सेनाओं ने अहमद नगर की ओर प्रस्थान किया। दिसम्बर सन् १५६५ में अहमद नगर पर घेरा डाला गया। यह सुन सुलताना चाँदबीबी बीजापुर से मृत पिता के राज्य की रक्षा के लिए आई। वह साधारण स्त्री नहीं थी। वह स्वयं सेना का संचालन देख रही थी, और सैनिकों को प्रोत्साहित कर रही थी। घोर युद्ध होता रहा। बादशाह की सेना घबरा गई। कई बार युद्ध हुआ और कई बार हटा। सन् १६०० में चाँदबीबी को उसके सिपाहियों ने मार डाला। तब अहमद नगर विजय हो गया और दिल्ली का सूबा बना।

अकबर का शासन—अकबर ने अपना राज्य दृढ़ करने के लिए हिन्दुओं को अपना साथी बनाया। उसने जज़िया हटाया और हिन्दुओं को पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता दी। तीर्थ-स्थानों के कर उसने हटा दिए। सती और पशु-बलिदान को रोकने का भी बादशाह ने कुछ यत्न किया। अकबर ने बाल-विवाहों के रोकने की भी चेष्टा की। उसने राजपूतों को अपना सेनाध्यक्ष बनाया। ये सारी बातें राजपूतों के संसर्ग से ही उसमें उत्पन्न हुई थीं। हिन्दुओं के साथ समानता का व्यवहार कर के अकबर ने उन्हें वस्तुतः जीत लिया। भूत को सदा ही भूलने वाला हिन्दू अकबर का परम सहायक हो गया। यदि औरङ्गजेब

अपनी धर्मान्धता से हिन्दुओं को तंग न करता तो अकबर का बनाया हुआ साम्राज्य न जाने कब तक भारत में स्थिर रहता।

सूबों का प्रबन्ध—अकबर का भारत १५ सूबों में बाँटा गया था। हर एक सूबे में एक सूबेदार था और लगभग तीन वर्ष के पीछे बदला जाता था। सूबे का प्रबन्ध अधिकांश में सूबेदार के आधीन था। दण्ड-नियम कठोर परन्तु सब हिन्दू मुसलमानों के लिए समान थे। व्यापार की स्वच्छता का ध्यान रखा जाता था और तुला बाँट की जाँच होती रहती थी।

सेना-प्रबन्ध—सेना के चार विभाग थे। पैदल, अश्वारोही हाथी और तोपखाना। तोपखाने का बड़ा ध्यान रखा जाता था। वेतन नियमित मिलता था। अकबर की स्थायी सेना बड़ी भारी थी। सब प्रधान राजकर्मचारी वीर योद्धा होते थे।

टोडरमल—राजा टोडमल बादशाह का अर्थमन्त्री था। यह पुरुष अत्यन्त प्रतिभाशाली था। पहले कहा गया है कि भारत की भूमि का माप पहले इसी ने किया। माप के पश्चात् हर भूमि की उपज का हिसाब लगाया, तत्पश्चात् उसने भूमि-कर निश्चित किया। उपज का तीसरा भाग राजकीय होता था। प्रति दस वर्ष में भूमि-कर का फिर से निर्णय होता था। किसान लोग इस नए प्रबन्ध से बहुत सन्तुष्ट थे।

इमारतें—फतहपुर सीकरी नाम का एक नगर अकबर ने आगरे के पास बनवाया। इस की इमारतें अकबर के शिल्प-प्रेम का एक अच्छा उदाहरण हैं। सीकरी में बुलन्द दरवाज़ा नाम का एक ऊँचा द्वार है। उसकी ऊँचाई १७६ फीट है। भारत में इतना ऊँचा द्वार अन्यत्र नहीं बना। अकबर ने और भी कई सुन्दर इमारतें बनवाईं।

अब्बुलफ़ज़ल—राजकुमार सलीम का अब्बुलफ़ज़ल से द्वेष था। अब्बुलफ़ज़ल कट्टर मुसलमान पर सूफी था। वह साहित्य का प्रेमी और बड़ा विद्वान् था। उसका भाई फ़ैज़ी भी बड़ा विद्या-रसिक था। दोनों भाइयों में अगाध प्रेम था। अब्बुलफ़ज़ल ने अकबर का इतिहास लिखा है। इस इतिहास में वह मुसलमानों का पक्ष अत्यधिक करता है और कई बार सत्य को छिपाता है। अब्बुलफ़ज़ल का विचार था कि राजकुमार सलीम ही अकबर को मुसलमानी धर्म से परे फेरता रहता है। इसलिए सन् १६०२ में बुन्देला राजपूत वीरसिंह से सलीम ने उसे मरवा दिया।

अकबर का साहित्य-प्रेम—अकबर ने उर्दू भाषा का प्रचार करवाया। ब्रज-भाषा की भी उसके काल में बहुत उन्नति हुई। अकबर ने सैकड़ों संस्कृत ग्रन्थों के फ़ारसी अनुवाद कराये। वह अपने दरबार में पण्डितों को भी मान देता था। फ़ैज़ी आदि तो उस के दरबार के रत्न थे ही। अकबर का पुस्तकालय बड़ा विशाल था। उस में २०००० से अधिक अत्यन्त सुन्दर लिखे हुए ग्रन्थ थे।

सूर और तुलसी—भक्ति धारा के विख्यात कवि सूर और तुलसी अकबर के ही काल में हुए थे। इन हिन्दू कवियों का तो एक मण्डल सा बन गया था।

ब्रज का प्रसिद्ध कवि रहीम या अब्दुल रहीम खानखाना अकबर के ही दरबार का रत्न था। तानसेन आदि सङ्गीत-शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य भी अकबर के ही दरबार में थे।

अकबर के धार्मिक विचार—जन्म से अकबर मुसलमान था, पर संस्कार से वह कुछ कुछ मुसलमान कुछ कुछ हिन्दू और कुछ कुछ स्वतन्त्र विचार का हो गया था। यह अपना दीने-इलाही

(ईश्वरीय धर्म) नाम का एक स्वतन्त्र मत चलाना चाहता था। अपनी राजधानी सीकरी में उसने एक पूजा-स्थान (इबादत खाना) बनवाया। इस में हर वृहस्पतिवार को एक सभा हुआ करती थी। मुसलमान, हिन्दू, जैन और ईसाई अपने अपने विचार वहाँ बताया करते थे। अकबर स्वयं सभापति बना करता था। कभी-कभी बड़े बड़े उद्भट विद्वान् भी इस सभा में आया करते थे। अकबर प्रातः-काल सूर्य को नमस्कार करता था और उसे ईश्वर की प्रत्यक्ष शक्ति समझता था।

मृत्यु—अकबर के अनेक मित्र मर चुके थे। बीरबल, टोडर-मल, भगवानदास, अब्बुलफ़ज़ल और फैजी आदि का नाम इति-हास के पृष्ठों में ही रह गया था। बादशाह का शरीर भी निर्बल हो रहा था। चालीस वर्ष युद्धों में रहने का प्रभाव अब प्रकट हो रहा था। औषध सब निष्फल सिद्ध हो रहे थे। सलीम को भारत का भावी सम्राट् बना कर ६३ वर्ष की आयु में १७ अक्टूबर सन् १६०५ को अकबर का देहान्त हो गया।

उन्तीसवाँ अध्याय

जहाँगीर और शाहजहाँ

जहाँगीर (सन् १६०५-१६२७)—सलीम ३६ वर्ष का था, जब अकबर का देहान्त हुआ। सरदार लोग सलीम को नहीं चाहते थे। वे उस के पुत्र खुसरो को सिंहासन पर बिठाना चाहते थे। उन में मानसिंह और अज़ीज़ कोका प्रधान थे। पर वे सफल नहीं हुए। सन् १६०५ में सलीम ने जहाँगीर का नाम धारण कर



बाबर

प्रसिद्ध
मुगल
बादशाह



हुमायूँ



अकबर

प्रसिद्ध मुगल बादशाह



जहाँगीर



शाहजहाँ



औरंगज़ेब

के अकबर का स्थान ले लिया। सिंहासन पर बैठते ही सलीम ने मुसलमान सरदारों को विश्वास दिलाया कि वह धर्म के विरुद्ध नहीं चलेगा।

जहाँगीर राजपूत माता से अकबर का पुत्र था। इसी कारण उस में उदारता कूट-कूट कर भरी थी। अत्यन्त लाड़-प्यार में पलने के कारण उसे शराब पीने का बहुत स्वभाव पड़ गया था। जहाँगीर स्वयं लिखता है कि पहले वह बीस प्याले प्रति दिन पीता था पर सम्राट् बनने पर वह पाँच या छः ही पीने लगा।

खुसरो का विद्रोह—जहाँगीर के बादशाह बनते ही खुसरो ने विद्रोह कर दिया था। था वह जहाँगीर का पुत्र, पर अमीरों के कहने में आकर वह पिता का विरोधी बन बैठा। खुसरो दिल्ली की ओर बढ़ा। वहाँ से वह सीधा लाहौर पहुँचा और लाहौर को उसने अपने अधीन कर लिया। सिक्ख गुरु अर्जुन देव उस समय जीवित थे। उन्होंने उस से सहानुभूति प्रकट की। जहाँगीर बड़ी सेना के साथ लाहौर आया और उस ने खुसरो को हरा दिया। खुसरो भाग निकला पर चनाब के तट पर पकड़ा गया। वह १६ वर्ष तक कैद रहा और अन्त में कुमार खुर्रम के संकेत पर मारा गया।

गुरु अर्जुन को मृत्यु-दण्ड—खुसरो के सहायक पकड़े गए। उन में से ७०० सूली पर चढ़ाये गये। गुरु अर्जुनदेव पर जुर्माना हुआ, उन्होंने देने से इनकार किया। वे अपनी संपत्ति को ईश्वर की संपत्ति मानते थे। अतः बादशाह ने उन्हें फाँसी का दण्ड दिया। जहाँगीर की यह अदूरदर्शिता मुसलमानों को महँगी पड़ी। सिक्ख सम्प्रदाय में मुसलमानों के प्रति वैर उत्पन्न हो गया।

नूरजहाँ—नूरजहाँ फ़ारस-निवासी ग़यासबेग की कन्या

थी। आर्थिक अवस्था अच्छी न होने के कारण गयास भारत आया। होते-होते अकबर के दरबार में उसे एक स्थान मिल गया। नूरजहाँ जो उन दिनों मेहरुन्निसा के नाम से पुकारी जाती थी, अपनी माता के साथ बादशाह के महल में आया-जाया करती थी। मेहरुन्निसा थी असाधारण सुन्दरी। सलीम उसकी ओर आकर्षित हो गया। अकबर को भी इस बात का पता लग गया। उसने नूरजहाँ का विवाह शेरअफ़ग़न से कर दिया। वह उन दिनों बर्दवान का सूबेदार था। जब अकबर का देहान्त हो गया तो जहाँगीर ने शेर-अफ़गान को सन्देशा भेजा कि वह मेहरुन्निसा को तलाक दे देवे। शेर अफ़गन ने इसे न माना। जहाँगीर ने कुतुबुद्दीन को आज्ञा दी कि शेर अफ़गन को दण्ड देवे। कुतुबुद्दीन और शेर अफ़ग़न का छोटा-सा युद्ध हुआ। उस में दोनों मारे गए। नूरजहाँ आगरा लाई गई। बादशाह ने उस से विवाह का प्रस्ताव किया। पहले वह न मानी, पर चार-पाँच वर्ष के पश्चात् उस ने जहाँगीर से विवाह कर लिया।

विवाह के पश्चात् जहाँगीर ने साम्राज्य का बहुत सा काम नूरजहाँ के सुपुर्द कर दिया। नूरजहाँ बड़ी बुद्धिमती थी। उस ने राज-कार्य बड़ी चतुरता और दूरदर्शिता से किया। नूरजहाँ स्वयं दरबार में बैठती थी। फ़ारसी माता-पिता के कारण उस को फ़ारसी का अच्छा ज्ञान था। दीन-दुखियों पर दया के लिए उस ने अच्छी ख्याति प्राप्त की। जहाँगीर की सब स्त्रियाँ हिन्दू थीं, केवल नूरजहाँ ही मुसलमान थी।

जहाँगीर के युद्ध— जहाँगीर को भी कई युद्ध करने पड़े। पहले उस ने काबुल के विद्रोह को शान्त किया। फिर सन् १६१२ में बङ्गाल का विद्रोह शान्त किया। अहमदनगर पर

मलिक अम्बर ने अपना स्वामित्व स्थिर कर लिया था। राजकुमार खुर्रम उस को दबाने के लिए दक्षिण आया। मलिक अम्बर ने अधीनता स्वीकार कर ली, पर वस्तुतः वह स्वतन्त्र ही रहा।

महाराणा अमरसिंह—महाराणा प्रताप का पुत्र महाराणा अमरसिंह अब चित्तौड़ का राणा था। सन् १६०३ में जब अकबर अभी जीवित था, तो उसने सलीम को भारी सेना देकर मेवाड़ की ओर भेजा। महाराणा प्रताप के युद्धों से सलीम थक चुका था। वह बहाना करके लौट आया। जब सलीम ज़हाँगीर के नाम से स्वयं बादशाह बना, तो मेवाड़-सम्बन्धी अकबर की नीति उस ने स्थिर रखी। सन् १६०५ में परवेज़ ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। उसे असफल ही लौटना पड़ा। फिर १६०८ में महावतखाँ १२००० सवारों और २००० बन्दूकचियों सहित मेवाड़ पर चढ़ा। महावतखाँ ऊटाले पहुँचा। पर्वतों में छिपे हुए महाराणा ने अपने सरदारों से कहा कि रात ही रात उस पर आक्रमण करो। राजपूतों ने ५०० सेना के साथ अकस्मात् रात को आक्रमण किया। शाही सेना भाग उठी। महावतखाँ भी राजपूताने के पहाड़ों में राणा का कुछ न बिगाड़ सका। बादशाह ने उसे बुला लिया।

अब अब्दुल्लाखाँ मेवाड़ भेजा गया। उसको भी कुछ सफलता प्राप्त न हुई। फिर बादशाह सन् १६१३ में स्वयं अजमेर आया। राजकुमार खुर्रम पुनः मेवाड़ भेजा गया। राजपूतों की मनुष्य-संख्या कम हो रही थी। उन्हें युद्ध पर युद्ध करने पड़ रहे थे। जौहर की अग्नि ने सहस्रों वीर देवियों का शरीरान्त कर

दिया था। पर मेवाड़ी राजपूत स्वाधीनता को प्राणों से बढ़ कर मानते थे। बादशाह ने अपना सारा दल-बल एक छोटी सी रियासत पर लगा दिया। युद्ध होते-होते बरसों बीत गये। प्रजा दुःख में पड़ी थी। राणा सुदृढ़ था। उस के सरदारों में से कइयों की तो पीढ़ियाँ ही लड़ते-लड़ते बीती थीं। इतने में राजपूत सरदारों ने किसी बुरी भावना से नहीं, पर अत्यन्त तंग आकर कुमार कर्णसिंह से परामर्श किया। सबने सन्धि करने का निश्चय किया। जहाँगीर भी तंग आ चुका था। उसने बड़ी हलकी शर्तों पर तत्काल सन्धि मान ली। महाराणा को बादशाह के दरबार में जाने का अपमान न सहना पड़ा और न ही उसने डोला दिया। यही गौरव-रक्षा थी और इस प्रकार महाराणा अपने घर से बाहर निकलने पर विवश न हुआ। वीर राजपूत लगभग ४०० वर्ष तक अनथक युद्ध लड़ कर अन्त को इस सन्धि करने पर विवश हुए।

काङ्गड़ा-विजय—काङ्गड़े का पार्वत्य प्रदेश अभी तक स्वतन्त्र था। सिकन्दर लोदी ने काङ्गड़े के राजा रामचन्द्र से कई युद्ध किए थे पर वह सदा असफल रहता रहा। इब्राहीम लोदी ने पानीपत की लड़ाई में रामचन्द्र से सहायता माँगी। उस लड़ाई में रामचन्द्र मारा गया। जहाँगीर से पहले मुग़ल बादशाहों ने भी काङ्गड़ा लेने का यत्न किया पर वे पूरे सफल न हुए। पानीपत के युद्ध के पूरे ६४ वर्ष पश्चात् जहाँगीर ने नगरकोट के प्रसिद्ध दुर्ग को विजय कर लिया।

प्लेग—कहते हैं प्लेग पहले-पहल जहाँगीर के काल में पंजाब में प्रकट हुई। इस के कारण सहस्रों स्त्री-पुरुष मरे और यह रोग देशव्यापी हो गया।

सर टामस रो—सन् १६१५ में इङ्गलैंड के बादशाह जेम्स प्रथम ने अपना राजदूत टामस रो सम्राट् जहाँगीर के दरबार में भेजा। बादशाह ने दूत का स्वागत किया और व्यापार के लिए अङ्गरेज़ों को बहुत सी सुविधाएँ दीं। इस राजदूत ने उन दिनों के मुगल-दरबार का अच्छा परिचय दिया है।

जहाँगीर का न्याय—जहाँगीर बड़ा न्यायप्रिय था। वह कट्टर मुसलमान न था। हिन्दू-मुसलमान सन्तों और फ़कीरों का वह बड़ा मान करता था। दण्ड देने में कठोर था। उसने अपने कमरे से एक जंजीर दुर्ग के बाहर की दीवार पर से जाती हुई नीचे लटकवा दी थी। कमरे में जो जंजीर का सिरा था, उस से एक घंटी बँधी हुई थी। प्रत्येक दु:खी उसे खटखटा सकता था। बादशाह स्वयं उसे बुलाता था और उसका संकट सुन कर दूर करता था।

मृत्यु—सन् १६२७ में काश्मीर से लौटते हुए मार्ग में जहाँगीर की मृत्यु हुई। उसका मृतक शव लाहौर के पास शाहदरे में दबाया गया। जहाँगीर का मकबरा एक ऐतिहासिक इमारत है।

शाहजहाँ (सन् १६२८-१६५९)—जहाँगीर के चार पुत्र थे। खुर्रम, परवेज़ खुसरो और शहरयार। खुर्रम का विवाह नूरजहाँ के भाई आसफ़खां की कन्या से हुआ था। जब जहाँगीर की मृत्यु हुई, तो खुर्रम दक्षिण में था। आसफ़खां ने तत्काल उसे संदेशा भेजा। खुर्रम आगरे पहुँचा और उसने प्राय: सब राजकुमारों और निकटस्थ सम्बधियों को गुप्त रूप से मरवा डाला। फिर वह सन् १६२८ में राजसिंहान पर बैठा। उसने अपना नाम शाहजहाँ रखा।

दक्षिण के युद्ध—दक्षिण में खानजहाँ लोदी ने स्वतन्त्र होने का यत्न किया। शाही सेना वहाँ पहुँच गई और १६३१ में खानजहाँ मारा गया। इसके दूसरे ही वर्ष अर्थात् सन १६३२ में शाही सेना ने अहमदनगर भी ले लिया। सन् १६३५ में शाहजहाँ दक्षिण पहुँचा। बीजापुर और गोलकुण्डा के बादशाहों ने अधीनता स्वीकार कर ली। बीजापुर ने थोड़ा सा युद्ध तो किया पर शाही सेना का वह मुकाबला न कर सका।

दक्षिण को अधीन करके शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरङ्गजेब को दक्षिण का हाकिम बनाया। औरङ्गजेब सन् १६३६ से १६४४ तक दक्षिण ही में रहा।

दुर्भिक्ष—शाहजहाँ के समय सन् १६३० में एक बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। यह लगभग दो वर्ष तक रहा। गुजरात और दक्षिण के अनेक भागों पर इसका प्रभाव पड़ा। बादशाह की ओर से दुःखी लोगों को सहायता मिलती थी।

मुमताज बेगम—आसफ़खाँ की कन्या और शाहजहाँ की बेगम मुमताज का अपने पति बादशाह पर नियंत्रण था। राज्य के अनेक कामों में बेगम की सम्मति ली जाती थी। सन् १६३१ में इसका देहान्त हुआ। इसी की कब्र पर आगरा का प्रसिद्ध ताजबीबी का मकबरा बना है। यह मकबरा संसार की एक अद्भुत इमारत है। शाहजहाँ ने इसके अतिरिक्त कई इतिहास-प्रसिद्ध इमारतें बनवाईं।

शाहजहाँ का दरबार—शाहजहाँ का दरबार भौतिक ऐश्वर्य का एक जीता जागता नमूना था। ताऊस का सिंहासन इसी दरबार की शोभा थी। यह सिंहासन ७ वर्ष में बना था। कहते हैं,

इस पर लगभग ११ करोड़ रुपया व्यय हुआ था। यह सिंहासन सोने का था और हीरे जवाहिरात से जड़ा हुआ था।

शाहजहाँ का कोष बड़ा भरपूर था। उसकी सेना में पैदल और तोपखाने के अतिरिक्त लगभग १००००० (एक लाख) सवार थे। इतनी सेना रहने पर भी कई लेखक लिखते हैं कि शाहजहाँ के काल में सड़कें सुरक्षित न थीं। उन पर चोर और डाकू फिरते थे। धन के मद के कारण मुग़ल साम्राज्य में शनैः शनैः विलासिता आ रही थी।

शाहजहाँ के पुत्र—दिसम्बर सन् १६५५ को शाहजहाँ रोगी हुआ। दारा उसका प्रिय पुत्र था। वह प्रायः पिता के पास ही रहता था। दारा में धर्मान्धता नाम-मात्र को न थी। बादशाह ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियत किया। शाहजहाँ का दूसरा पुत्र औरङ्गज़ेब बड़ा चालाक और कट्टर मुसलमान था। वह दारा से सदा चिढ़ा करता था। यदि दारा भारत का सम्राट् बनता तो हिन्दू-मुसलमान की कलह सदा के लिए मिट जाती। बादशाह का तीसरा पुत्र शुजा बंगाल का हाकिम था। वह अपना समय विलासिता में व्यतीत करता था। चौथा पुत्र मुराद मूर्ख और मद्यप था। वह गुजरात का सूबेदार था।

पिता के रोगी होते ही दारा के सिवाय तीनों भाई बादशाह बनने की ताक में लगे। औरङ्गज़ेब ने दक्षिण में बड़ी सेना एकत्र की। उस सेना के साथ वह आगरे की ओर बढ़ा। दारा भी युद्ध के लिए तय्यार था। दारा हार गया और औरङ्गज़ेब ने उसको मरवा डाला। मुराद भी मरवा डाला गया और शुजा अराकान की ओर भाग गया।

जिस प्रकार शाहजाँ ने अपने सब सम्बन्धियों को मार कर

अपना राज्य निष्कंटक कर लिया था, उसी प्रकार औरङ्गज़ेब ने भी अपने सब भाइयों को मार कर अपना भावी मार्ग साफ कर लिया।

शाहजहाँ रोगमुक्त हो गया। कठोर पुत्र औरंगजेब ने उसे आगरे के दुर्ग में कैद कर दिया। शाहजहाँ सात वर्ष तक कैदी रह कर सन् १६६३ में मरा। कैद में उस ने अनेक कष्ट भोगे।

तीसवाँ अध्याय

औरङ्गज़ेब

सन् १६५६—१७०७

राज्याभिषेक—मुग़ल साम्राज्य का नष्ट करने वाला, हिन्दुओं को फिर से जगा देने वाला, अपनी अदूरदर्शिता से मराठा शक्ति को जन्म देने वाला, भारत में हिन्दू-मुसलिम फूट के कारणों का पुन: जन्मदाता औरङ्गज़ेब अपने निजी जीवन में बड़ा सरल और धार्मिक था। विलासिता से वह कोसों दूर भागता था। गाना बजाना उसे पसन्द न था, और कुरान की शिक्षा पर वह असीम श्रद्धा से चलता था। उसने अपने सारे साथियों पर अविश्वास करके अपनी शक्ति को निर्बल कर लिया। दारा को हराने में मीर जुमला नाम के सेनापति ने उसकी बड़ी सहायता की, पीछे से औरङ्गज़ेब उस पर भी अविश्वास करने लगा। अपने अनेक सम्बन्धियों को मार कर

और पिता को कैद कर के ४० वर्ष की आयु में सन् १६५६ में औरङ्ग़ज़ेब ने अपना राज्याभिषेक किया।

अकवर की नीति से भेद—अकबर ने हिन्दुओं को अपने साम्राज्य का स्तंभ बनाया था, उससे जज़िया दूर कर दिया था, और धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की थी। औरङ्ग़ज़ेव ने चुन-चुन कर हिन्दुओं को अपने दरबार से निकाला, मन्दिरों को तुड़वा कर उन पर मसजिदें बनवाईं, हिन्दू पाठशालाएँ बन्द कराईं, हिन्दुओं के धर्म प्रचारकों और साधु संन्यासियों को धर्म प्रचार से रोक दिया, सहस्रों लाखों हिन्दुओं को बल से मुसलमान बनाया, कई बार हिन्दू धर्म छोड़ देने वालों को इनाम भी दिए, हिन्दुओं के त्योहार बन्द किए, और जज़िया फिर जारी कर दिया। अकबर अपने मित्रों से कपट नहीं करता था। औरंगज़ेब ने कपट के बिना कभी कुछ सोचा ही नहीं। वह तो अपने हितूजनों से भी कपट कर जाता था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अकबर ने जो भी उपाय साम्राज्य को सबल बनाने के किए थे औरंगज़ेब ने उन सब को तिलाञ्जलि दे दी।

मीर जुमला—मीर जुमला एक ईरानी था। वह गोलकुण्डा के कुतुबशाह के दरबार में नौकर था। उसको दारा से द्वेष था। मीर जुमला ने औरंगज़ेब की सहायता की। इसी की सहायता से औरंगज़ेब राजसिंहासन पर अधिकार कर सका। मीर जुमला जिस काम में हाथ डालता था, सफल हो जाता था। उसकी ऐसी गति देख कर औरंगज़ेब मन ही मन उस से डरने लगा। वह उस अवसर की ताड़ में रहने लगा कि जब मीर जुमला का नाश कर दिया जाए। बादशाह ने

सोच-विचार कर उसे आसाम विजय करने भेज दिया। वहाँ का जल वायु उसे अनुकूल न बैठा। कुछ देर रोगी रह कर मीर जुमला सन् १६६१ में वहीं मर गया।

छत्रसाल (सन् १६५०—१७३३)—राजा छत्रसाल बुन्देल खंड का राजा था। वह प्रायः महोबे में रहा करता था। उसके पिता चंपतराय ने औरंगज़ेब को राज्य प्राप्त करने में बड़ी सहायता दी थी। बादशाह चंपतराय से भी द्वेष करने लगा। कई युद्ध हुए। सन् १६६४ में एक युद्ध में चंपत राय मारा गया। छत्रसाल ने शिवाजी और पेशवा के साथ मित्रता कर ली। बुन्देला सरदार छत्रसाल अपने स्वतंत्रता प्रेम के लिए अमर हो गया है।

सतनामी विद्रोह—किसी सरकारी सिपाही ने एक सतनामी का अपमान किया। सतनामी सम्प्रदाय के लोग निस्पृह और तपस्वी थे। वे नारनौल के आस पास रहते थे। उन्होंने बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया। कई बार शाही सेना को उन्होंने पछाड़ दिया। अन्त को बड़ी कठिनता से बादशाह वह विद्रोह शान्त कर पाया। २००० के लगभग सतनामी मारे गए।

धार्मिक सिक्ख सैनिक योद्धा बन गए—सन् १६०७ में जहाँगीर ने सिक्खों के गुरु अर्जुनदेव को मरवा डाला था। तब से सिक्खों के अन्दर एक अग्नि जलनी आरम्भ हो गई थी। शाहजहाँ के प्रशान्त राज्य में वह अग्नि बढ़ी नहीं। परन्तु औरंगज़ेब की नवीन धर्मान्धता ने उस अग्नि को बहुत चमका दिया। सन् १६७५ में औरंगजेब ने नवम गुरु तेग़बहादुर को दिल्ली बुलाया और उन पर एक मुकदमा चलाया। गुरु जी पर

दोष लगाया गया कि वे जनता को बादशाह के विरुद्ध भड़काते हैं। बादशाह ने हुक्म दिया कि या तो वे इस्लाम क़बूल करें या मौत। गुरु जी ने मौत मंजूर की।

गुरु गोविन्दसिंह— गुरु तेगबहादुर के पुत्र गोविन्दसिंह थे। वे दशम गुरु बने। उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि मुसलमान बादशाहों के इन अत्याचारों की समाप्ति कर दी जाए। बस फिर क्या था। सारा सिक्ख सम्प्रदाय क्षात्र-रंग में रँगा गया। एक धार्मिक श्रेणी देखते ही देखते वीर क्षत्रिय बाने में परिणत हो गई।

गुरु गोविन्दसिंह बड़े विद्वान् और साहसी थे। वे राजाओं के समान रहते थे। उनके दरबार में पण्डितों का एक जमघट रहता था। वे स्वयं भी उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाएँ करते थे। इस प्रकार उन्हें राजनीति का भी ज्ञान था। अपनी शक्ति को अल्प समझ कर उन्होंने पंजाब के पर्वतों को अपना केन्द्र-स्थान बनाया। वहीं से निकल कर वे मुग़ल सेना को नष्ट कर जाया करते थे। बादशाह को इनका मुकाबला महँगा पड़ रहा था। बादशाह इन्हें अपने अधीन नहीं कर सका।

राजपूतों के साथ युद्ध—सिसोदिया-कुल के वीर महाराणा राजसिंह का राज्याभिषेक सन् १६५३ में हुआ। उस समय उनकी आयु २४ वर्ष की थी। महाराणा अमरसिंह की सन्धि के अनुसार मेवाड़ मुग़ल राज्य का सूबा था। सन् १६५८ या १६५६ में बादशाह औरङ्ग़ज़ेब ने किशनगढ़ के राजा मानसिंह को सन्देशा भेजा कि वह अपनी अत्यन्त रूपवती बहन चारुमती का विवाह बादशाह से कर दे। मानसिंह विवश था, परन्तु चारुमती परम वैष्णव थी। उसने माहाराणा राजसिंह से पत्र द्वारा विवाह की प्रार्थना की। महाराणा उसे विवाह लाया। औरङ्ग़ज़ेब को यह बात बहुत चुभी।

जिस समय औरङ्गज़ेब वृन्दावन की मूर्तियाँ तुड़वा रहा था, उस समय वहाँ से कई मूर्तियाँ मेवाड़ लाई गई और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की गई। बादशाह को यह बात और भी बुरी लगी।

इतने में औरङ्गज़ेब ने जज़िया जारी कर दिया। चारों ओर के हिन्दू तंग आ गए। साम्राज्य में कोलाहल मच गया। महाराणा राजसिंह ने बहुत सोच विचार कर एक पत्र बादशाह को लिखा—"आपके पूर्वज स्वर्गीय अकबरशाह ने ५२ वर्ष न्याय से शासन किया। इसी प्रकार जहाँगीर ने २२ वर्ष प्रजा की रक्षा की। प्रसिद्ध शाहजहाँ ने भी ३२ वर्ष नेकी से राज्य किया। आपके पूर्वजों की भलाई के कारण ही उन्हें सर्वत्र विजय प्राप्त हुई। अब आपके समय कई सूबे आपकी अधीनता से निकल गए हैं, प्रजा कंगाल हो गई है और दुःख बढ़ रहे हैं। कंगाल प्रजा पर कर लगाना बादशाह का बड़प्पन नहीं है। आपका जज़िया न्याय और सुनीति के विरुद्ध है। यदि आपने रुपया लेना है तो मुझसे ले लें। आपके मंत्रियों ने आपको उचित सम्मति नहीं दी।"

इस पत्र को पढ़ कर बादशाह बहुत बिगड़ा। मेवाड़ पर चढ़ाई अब निश्चित हो गई। सन् १६७६ में बादशाह एक बड़ी सेना के साथ अजमेर की ओर चल पड़ा। १३ दिन में वह दिल्ली से अजमेर पहुँचा।

प्रथम आक्रमण—बादशाह के प्रस्थान का समाचार पाते ही महाराणा ने अपने कुमार तथा अन्य सामन्त सरदार दरबार में बुलाए। सब सरदारों ने युद्ध के उपायों पर अपनी अपनी सम्मति दी। अन्त में पुरोहित गरीबदास बोला—बादशाह अत्यन्त

बलवान है, इसलिए उस से बराबरी का युद्ध करना नीतिसंगत नहीं। जिस प्रकार उदयसिंह और प्रताप पर्वतों में चले गए थे और वहीं से युद्ध करते थे, वैसे ही अब भी करना चाहिए। दिसम्बर में एक तोपखाना लिए हुए बादशाह स्वयं उदयपुर की ओर चला। बादशाह सब नाके रोकना चाहता था, परन्तु राणा के सैनिक समय समय पर वहाँ छापे मार कर उसकी सेना का नाश कर देते थे। बड़े बड़े प्रबन्ध करके बादशाह स्वयं अजमेर लौट गया।

बादशाह के चले जाने से राजपूतों का साहस बढ़ गया। उन्होंने बादशाही सेना का नाश कर दिया। यह पहला आक्रमण निष्फल सिद्ध हुआ।

दूसरा आक्रमण—बादशाह ने नई नीति के साथ दूसरे आक्रमण की योजना की। बादशाही सेना बड़ी सावधानी से आगे बढ़ने लगी। इधर सन् १६८० में महाराणा राजसिंह का देहान्त हो गया। उनका पुत्र जयसिंह अब महाराणा बना। उसने युद्ध जारी रखा। परन्तु अन्त में बादशाह से उसकी सन्धि हो गई। यह सन्धि सन् १६८१ में हुई। थोड़ा सा कर देना स्वीकार करके महाराणा स्वतन्त्र हो गया।

दक्षिण पर चढ़ाई—दक्षिण के मुसलमानी राज्य शिया थे और औरङ्ग़ज़ेब था कट्टर सुन्नी। वह उनको घृणा की दृष्टि से देखता था। राजपूताना से बादशाह निपट चुका था। इसलिए एक विशाल सेना लेकर सन् १६८१ में वह दक्षिण की ओर चला।

दक्षिण में गोलकुण्डा और बीजापुर के राज्य बादशाह के विरोधी थे। बादशाह ने उन पर कई चढ़ाइयाँ कीं और सन् १६८५ में गोलकुण्डा से सन्धि की और सन् १६८६ में बीजापुर ले लिया।

दक्षिण में औरङ्गज़ेब की सारी शक्ति अब मराठों को परास्त करने में लगने लगी। मराठों के गुप्त आक्रमण उसके लिए दुःसह होते गए। बादशाह लाचार था। उसकी सेना कष्ट में थी। बादशाह की इच्छा पूरी न हुई।

मृत्यु—फरवरी सन् १७०७ में अहमदनगर में औरङ्गज़ेब का देहान्त हुआ। औरङ्गज़ेब ने अच्छे कर्म नहीं किए थे। उसकी धर्मान्धता ने भारत की स्थिति बदल दी थी। देश कंगाल हो चुका था। लड़ते लड़ते शाही कोष भी खाली हो गये, राज-सेवकों को समय पर वेतन नहीं मिलते थे। चारों ओर अराजकता के चिह्न प्रकट होने लगे। औरङ्गज़ेब के सब पुत्र राजगद्दी पाने के लिए परस्पर लड़ने लगे। जिस प्रकार औरङ्गज़ेब ने दूसरों को हराकर और मारकर राजगद्दी प्राप्त की थी, उसी प्रकार मुअज़्ज़म ने भी सब को मारकर राज्य प्राप्त किया।

इकतीसवाँ अध्याय

मराठों का उत्कर्ष

पुराने दिनों में भारत के दक्षिण में राष्ट्रिक नाम का एक देश था। वही पीछे से महाराष्ट्रिक नाम से प्रसिद्ध हुआ। समय समय पर महाराष्ट्र में बड़े-बड़े राज्य स्थापित हुए। मुसलमानी काल में मराठे सरदार दक्षिण की कई मुसलमानी रियासतों में नौकर थे। ऐसा ही एक क्षत्रिय सरदार शाहजी था। वह निज़ाम-शाही के दरबार में रहता था। सन् १६३६ में जब शाहजहाँ ने अहमदनगर जीत लिया तो शाहजी बीजापुर के आदिल-शाही कुल में जा नौकर हुआ।



छत्रपति शिवाजी

शिवाजी—हिन्दूपति शिवाजी शाहजी का पुत्र था। उसका जन्म ७ एप्रिल सन् १६२७ को हुआ। शिवाजी अपनी माता जीजाबाई के साथ शिवनेरी के दुर्ग में रहा करता था। बाल्यकाल से ही शिवाजी में साहस और वीरता कूट कूट कर भरी हुई थी। सन् १६४६ से शिवाजी ने इधर-उधर हाथ फैलाने आरम्भ किए। अपने आस पास के कई दुर्ग उसने ले लिए।

समर्थ गुरु रामदास—ये एक हिन्दू सुधारक थे। शिवाजी के जीवन-निर्माण में इनका बड़ा हाथ था। पक्के हिन्दू और भगवान् कृष्ण की नीति को मानने वाले गुरु रामदास के चरणों में रहकर शिवाजी ने राजनीति का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

महाराष्ट्र का समुद्रतट—धन के बिना कोई राजा स्थिर नहीं रह सकता, यह रहस्य शिवाजी खूब जान गया था। उसने चुपचाप देखना आरम्भ किया कि धन कहाँ कहाँ से आ सकता है। अपने समीप के अच्छे अच्छे दुर्ग वह ले ही रहा था। उन में से उसे पर्याप्त धन मिला ही, पर अब उसने बन्दर-स्थानों की ओर ध्यान दिया। अनेक बन्दर उसने अपने अधिकार में ले लिए। इन बन्दर स्थानों की आय से भी शिवाजी का कोष बढ़ने लगा।

बीजापुर से महायुद्ध (सन् १६५९-१६६२)—बीजापुर का सुलतान अली आदिलशाह शिवाजी की ऐसी बातें देखकर मन ही मन कुढ़ता था। अन्त में उसने शाहजी को कैद कर लिया। यह घटना १६४८ की है। उन दिनों शाहजहाँ जीता था। शिवाजी ने शाहजहाँ से पत्र द्वारा प्रार्थना की कि उसका पिता छुड़वाया जाय।

शाहजहाँ की आज्ञा से बीजापुर के सुलतान ने सन् १६४९ में शाहजी को छोड़ दिया।

शिवाजी और अफ़ज़लखाँ—शिवाजी समय समय पर बीजापुर रियासत के कई दुर्ग छीनने लगा। आदिलशाह ने अपने एक अनुभवी सरदार अफ़ज़लखाँ को शिवाजी को दण्ड देने भेजा। सन् १६५९ में अफ़ज़लखाँ ने शिवाजी से प्रतापगढ़ के समीप एक खेमे में भेंट की। अफ़ज़लखाँ शिवाजी को कैद करना चाहता था। उसका यह भाव जान कर शिवाजी ने हाथ के बघनखे से वहीं अफ़ज़लखाँ का पेट चीर दिया। अफ़ज़लखाँ वहीं मर गया। मराठों ने अफ़ज़लखाँ की सेना को भगा दिया।

इस कृत्य से शिवाजी की प्रसिद्धि बहुत अधिक हो गई। उस की धाक चारों ओर बैठ गई। शिवाजी ने फिर इधर उधर छापे मारे और बीजापुर के राज्य को निर्बल कर दिया। बड़े-बड़े वीर मराठे सरदार शिवाजी के पास आ गए और शिवाजी ने एक अच्छा राज्य स्थापित कर लिया।

मुगलों से युद्ध—औरङ्गजेब को शिवाजी के सब समाचार मिल रहे थे। बादशाह ने अपने मामा शाइस्ताखाँ को शिवाजी के विरुद्ध सेना लेकर जाने को लिखा। शाइस्ताखाँ दक्षिण का सूबेदार था। उसने तत्काल शिवाजी का एक दुर्ग ले लिया और सन् १६६० में पूना में जा धमका। शिवाजी पर्वतों में छिप रहा था। एक दिन वह नकली बरात बना कर रात्रि के समय अपने कुछ सैनिकों सहित पूना में घुसा। उसने शाइस्ताखाँ को उसके मकान में जा घेरा। शाइस्ताखाँ का पुत्र मारा गया और वह स्वयं भाग गया।

जयसिंह और शिवाजी—शाइस्ताखाँ के असफल होने

पर बादशाह ने राजा जयसिंह और कुमार मुअज़्ज़म को शिवाजी के विरुद्ध सेना सहित भेजा।

शिवाजी ने जयसिंह से सन्धि की बातचीत की। जयसिंह ने शिवाजी को आगरे भेज दिया। वहाँ बादशाह ने शिवाजी के साथ अच्छे प्रकार बातचीत न की। शिवाजी इस अपमान को सह न सका। बादशाह ने उसे कैद कर दिया। शिवाजी बड़े कौशल से वहाँ से भाग आया। सन् १६७० से उसने फिर युद्ध आरम्भ कर दिए।

सिंहगढ़ के दुर्ग का लेना—शिवाजी ने सूरत लूट लिया और खानदेश से चौथ प्राप्त की। शिवाजी का एक सेनापति तानाजी मालुसरे था। यह वीर मराठा अत्यन्त स्वामीभक्त था। शिवाजी ने पूना के पास वाले सिंहगढ़ को विजय करने का उसे हुक्म दिया। तानाजी दुर्ग पर जा चढ़ा। घोर युद्ध हुआ। तानाजी असाधारण पराक्रम से लड़ा और युद्ध में मारा गया। पर दुर्ग मराठों ने ले लिया। मित्र की मृत्यु से उदास शिवाजी दुर्ग में प्रविष्ट हुआ और बोला "सिंहगढ़ आया, पर हमारा सिंह गया।"

बीजापुर से दूसरा युद्ध—सन् १६७२ में आदिलशाह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु होते ही बीजापुर में खलबली पड़ गई। शिवाजी ने समय देखकर बीजापुर के कई दुर्ग ले लिए। जेसरी पर बीजापुर वाले सर्वथा पराजित हुए। शिवाजी के भी कई वीर मारे गए।

शिवाजी का राज्याभिषेक—सन् १६७४ में शिवाजी ने रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक किया। बड़े बड़े विद्वान् ब्राह्मण और अनेक राजाओं के दूत उपस्थित हुए। शिवाजी ने अपना मन्त्रीपरिषद् बनाया। उन्होंने अपनी ध्वजा गेरुए वस्त्र की

बनाई । इस से उन्होंने यह प्रकट किया कि वे समर्थ गुरु रामदास के शिष्य हैं।

मृत्यु—सन् १६८० में ५३ वर्ष की आयु में शिवाजी का देहान्त हो गया।

शिवाजी के काम का फल—सारा महाराष्ट्र देश एकत्र हो गया। दक्षिण के हिन्दुओं को अपना एक सुदृढ़ रक्षक मिल गया। संस्कृत विद्या का प्रचार बढ़ने लगा। गो, ब्राह्मण की रक्षा होने लगी।

हिन्दुओं में बड़े बड़े शूर उत्पन्न होने लगे। शिवाजी ने अपना जहाज़ी बेड़ा भी बनाया और राज्य का प्रबन्ध अत्यन्त सुन्दर रूप से किया।

छत्रपति संभाजी (सन् १६८०–१६८९)—संभाजी छोटी अवस्था से ही व्यसनी हो गया था, फिर भी उसमें अपने पिता की वीरता थी। सन् १६८३ में औरङ्गज़ेब ने दक्षिण जीतने के लिए बड़ी सेना एकत्र की। संभाजी पुर्तगीज़ों से लड़ कर उन्हें विजय कर चुका था। उसे बादशाह की चढ़ाई की सूचना मिली। बागलाना स्थान पर मराठों का मुग़ल सेना से सामना हुआ। मुग़ल सेना हार गई। बादशाह बीजापुर और गोलकुण्डे को विजय करने चला गया। संभाजी इस क्षणिक विजय से प्रसन्न हो कर व्यसनों में पड़ गया। उस की प्रजा कंगाल हो रही थी, कोष खाली था। संभाजी ने राज्य व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं किया।

संभाजी का वध—सन् १६८७ में बादशाह ने मराठों के साथ पुनः युद्ध आरम्भ किया। राजकुमार अकबर संभाजी के पास था। वह तो ईरान की ओर चला गया। बादशाह की सेना से हंबीरराव मोहिते का युद्ध हुआ। वह मराठा राज्य का

दक्षिण हाथ था। युद्ध तो जीता गया पर हंवीर मारा गया। अब मुग़ल सेना पुनः यत्न करने लगी। संभाजी घिर कर कैद हो गया। बादशाह ने उसे मुसलमान होने को कहा। पहले संभाजी ने कहा कि बादशाह यदि अपनी कन्या का विवाह उससे कर दे तो वह मुसलमान हो जाए। तत्पश्चात् उसने इस्लाम धर्म की कड़ी आलोचना की। बादशाह को क्रोध चढ़ आया और उसने संभाजी की जिह्वा कटवा डाली। अंत में बादशाह ने संभाजी को मरवा डाला।

बादशाह की इस अनीति के कारण सारे महाराष्ट्र में एक नया जीवन आ गया।

छत्रपति राजाराम (सन् १६८९-१७०८)—संभाजी मारा गया। शाही सेना आगे ही आगे बढ़ रही थी। मराठों का एक एक दुर्ग लिया जा रहा था। राजाराम शिवाजी का छोटा पुत्र था। वह त्यागी, तपस्वी और परिश्रमी था, व्यसन उस को न भाते थे। कई सरदार उस के साथ थे। सरदारों ने राज्य की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। राजाराम ने युद्ध की विधि बदली।

जिस युद्ध-विधि को महाराणा प्रताप और महाराणा राजसिंह ने बरता और जिस युद्ध-विधि के कारण छत्रपति शिवाजी ने अपना राज्य स्थापित किया था, उसी युद्ध-विधि को अब छत्रपति राजाराम ने अपनाया। बादशाही सेना अत्यधिक थी। उसके खाने-पीने का सामान ही कितनी कठिनाइयों से ले जाया जा सकता था। तोपखाना ऊँचे पहाड़ी स्थानों में बड़ी कठिनता से पहुँचता था। मराठा पैदल या सवार अपना भोजन अपने साथ रखता था, और क्षण भर में पहाड़ों पर कहीं से कहीं पहुँच जाता था।

बादशाह के सिपाही और सरदार अभिमानी और विलासी थे। मराठा सरदार सन्ताजी और धनाजी इस युद्ध विद्या में अत्यन्त निपुण थे। सन्ताजी ने मुग़ल सेना को तंग कर दिया। उस के सामने गया हुआ व्यक्ति अपना प्राणान्त समझता था। उस के नाम की धाक बैठ गई। मुसलमान सरदार उस का नाम सुन कर काँप उठते थे। धनाजी की भी ऐसी ही ख्याति हो गई। सन्ताजी ने एक बार बादशाह के खेमे को जा घेरा। बादशाह वहाँ न था, इसलिए बच गया। सन्ताजी ने खेमे का सुवर्ण कलश तोड़ लिया।

बड़े यत्नों के पश्चात् शाही सेना ने जिंजी का दुर्ग घेर लिया। अपने कई सरदारों के साथ राजाराम यहीं रहता था। यह घेरा ६ वर्ष तक पड़ा रहा। जब शाही सरदारों ने वह दुर्ग ले लिया, तो उस के अन्दर राजाराम न था। वह तो अपने कई सरदारों सहित पहले ही वहाँ से निकल गया था।

जिंजी से निकल कर राजाराम ने सितारा में अपनी गद्दी स्थापित की। इसी स्थान से अब मराठा सरदारों ने फिर चारों ओर छापे मारने आरम्भ कर दिए। राजाराम स्वयं खानदेश तक बढ़ा और उसने वहाँ से चौथ प्राप्त की। राजाराम का सारा समय भयङ्कर युद्धों में बीत रहा था। सन् १७०० में उसे ज्वर आया, और २६ वर्ष की आयु में ही यह वीर मर गया।

ताराबाई और शिवाजी (दूसरा) (सन् १७००-१७०८)–

राजाराम की पहली स्त्री का नाम था ताराबाई, और उससे हुए पुत्र का शिवाजी। राजाराम के पश्चात् ताराबाई ही राजकार्य करने लगी। धनाजी आदि सरदार उसके सहायक थे। बादशाह

ने सन् १६९९ में मराठों पर स्वयं चढ़ाई की। उसके मन में यह संकल्प दृढ़ था कि मराठों का सर्वनाश कर देना है।

वह मराठों के दुर्ग लेकर कुछ ही दूर जाता था कि मराठे अपने सब दुर्ग लौटा लेते थे। बादशाह घबरा उठा। उसका कोष खाली हो रहा था। मराठों की शक्ति प्रति दिन बढ़ रही थी। बादशाह की बुद्धि काम न करती थी। पार्वत्य प्रदेश के इस नये युद्ध-प्रकार से वह हताश हो गया। बड़ी बड़ी सेनाएँ और तोपखाने किसी काम न आते थे। निराश बादशाह औरङ्गज़ेब सन् १७०७ में अहमद नगर के दुर्ग में मर गया।

शाहू—सम्भाजी का पुत्र शाहू बादशाह की कैद में था। बादशाह के मरते ही वह कैद से छूट कर महाराष्ट्र की ओर आया। ताराबाई उसे न चाहती थी। पर अनेक सरदार शाहू से जा मिले। ताराबाई भाग गई और सन् १७०७ में शाहू ने अपना राज्याभिषेक किया।

बत्तीसवाँ अध्याय

मुगल साम्राज्य का विनाश

औरङ्ग़ेब के पुत्रों का युद्ध—वृद्ध बादशाह औरङ्गजेब अत्यन्त निराशा की अवस्था में मरा। उसने अपने साम्राज्य के विनाश के चिह्न अपने सामने देख लिए। २० वर्ष तक स्वयं मराठों से युद्ध करके जब वह सफल न हो सका, तो उस के आलसी पुत्र कुछ कर गुज़रेंगे, ऐसी उसे आशा न रही।

गत दो पीढ़ियों में मुग़ल बादशाहों की नीति हो गई थी कि राजसिंहासन के लिए अपने सम्बन्धियों को तलवार के घाट उतारें। औरङ्ग़ज़ेब के चार पुत्र थे। अकबर उनमें से पहले ही राजपूत विद्रोह के समय कहीं भाग गया था। शेष रहे तीन। उनमें से बड़ा मुअज़्ज़म काबुल में था। दूसरा आज़म अहमदनगर में और तीसरा कामबख़्श बीजापुर में था। मृत बादशाह के स्वीकार पत्र में तीनों पुत्रों के लिए राज्य को तीन भागों में बाँटा गया था। परन्तु वे तीन कब इस बात को मानने वाले थे।

मुअज़्ज़म और आज़म अपनी अपनी सेनाओं के साथ आगरे की ओर बढ़े। राजपूत मुअज़्ज़म की सहायता कर रहे थे। धौलपुर और आगरे के बीच दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ। आज़म की हार हुई और वह युद्ध में मारा गया।

मुअज़्ज़म बहादुरशाह (सन् १७०७—१७१२)— मुअज़्ज़म ने राजसिंहासन प्राप्त किया और वह बहादुरशाह के नाम से मुगल सम्राट् बना। सन् १७०८ में जब कामबख़्श भी युद्ध में हारा और मारा गया तब बहादुरशाह निर्विवाद ही भारत का बादशाह बन गया।

राज्य को सँभालते समय बहादुरशाह की आयु ६५ वर्ष की थी। बहादुरशाह दयावान् और उदारहृदय बादशाह था। उसके राज्यकाल में मुग़ल साम्राज्य और भी अवनत हो गया। उसकी अवनति का एक कारण बन्दा था।

बन्दा बहादुर— मीरपुर (जम्मू) के पार्वत्य प्रदेश का एक राजपूत वैरागी बन कर नासिक के पञ्चवटी तीर्थ स्थान पर घोर तपस्या किया करता था। वहीं उसकी गुरु गोविन्दसिंह

जी से भेंट हुई। वह गुरु का शिष्य बन गया। सन् १७०८ में गुरु गोविन्दसिंह जी मारे गए। बन्दा ने अपनी तपस्या त्यागी और वीर क्षत्रिय का वेश धारण किया। वह पञ्जाब में आया और उसने बहुत सी सिख सेना एकत्र कर ली। उसने सरहिन्द ले लिया। सिखों के हृदय मुसलमानों के विपरीत थे। इस विजय के पश्चात् सिखों ने बदला लिया। बादशाह बहादुरशाह ने बन्दा को पकड़ने के लिए अनेक यत्न किए, पर वे सब निष्फल हुए। अन्त में फर्रुखसियर ने सन् १७१६ में बन्दा को परास्त किया। बन्दा कभी परास्त न होता यदि उसके कुछ सरदार उससे धोखा न करते। बन्दा कैद हो गया और फर्रुखसियर ने बड़ी निर्दयता के साथ उसे मरवाया। इसके पश्चात् लगभग ३० वर्ष तक तो सिक्ख चुप रहे, फिर उन्होंने पञ्जाब में अपने अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित कर लिये।

बहादुरशाद की मृत्यु—सन् १७१२ में ७० वर्ष की आयु में बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु हुई।

जहाँदारशाह (सन् १७१२-१७१३)—जहाँदार शाह भी अपने कुल की प्रथा के अनुसार अपने भाइयों को मार कर राजसिंहासन पर बैठा। यह बादशाह क्रोधी और दुर्व्यसनी था। अमीर और सरदार इससे अप्रसन्न रहते थे। उन दिनों दो सरदार अत्यन्त शक्तिशाली हो गए। वे दोनों भाई थे। नाम थे उनके हुसैन अली और अब्दुल्ला सैयद। इतिहास में ये दोनों भाई "सम्राट् विधाता" के नाम से पुकारे जाते हैं। इन दोनों ने जहाँदार शाह के भतीजे फर्रुखसियर को भारत का बादशाह बना दिया। जहाँदारशाह मरवा दिया गया।

फरुखसियर (सन् १७१३-१७१९)—फर्रुखसियर

सैयद भाइयों का बड़ा ऋणी था। वह उनके कथन को आज्ञा के समान मानता था। सैयद बन्धु राजपूतों की शक्ति को जानते थे। उन्होंने राजपूतों से घनिष्ठ मित्रता कर ली। सैयद बन्धुओं के कहने से ही फर्रुखसियर ने जज़िया बन्द कर दिया। परन्तु फिर उसे मक्के से आज्ञा आई कि जज़िया लगा दो। उस पर बादशाह ने फिर जज़िया लगा दिया। इस आज्ञा से भारत में फिर द्वेष की अग्नि भड़क उठी।

अंग्रेज़ी कम्पनी को अधिकारों का मिलना—फर्रुख़सियर एक बार रोगी हुआ। कम्पनी के डाक्टर हैमिल्टन की चिकित्सा से वह स्वस्थ हो गया। उसने प्रसन्न हो कर कम्पनी को कई स्थानों पर बिना महसूल व्यापार की आज्ञा दे दी।

मराठे उन दिनों अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। आगरे के पास के जाट भी लूट मार करते रहते थे। फर्रुख़सियर की सारी शक्ति सिक्खों के विरुद्ध व्यय हो रही थी। बन्दा को पकड़ने के पश्चात् बादशाह ने सिक्खों को बहुत कत्ल कराया। इतने में बादशाह ने सैयद भाइयों से अनबन कर ली। उन्होंने बादशाह को मरवा डाला और तत्पश्चात् एक एक करके चार बादशाद बनाए।

मुहम्मदशाह (सन् १७१९-१७४८)—मुहम्मदशाह भी सैयदों की कृपा से बादशाह बना। बादशाह बनते ही उसने सैयद भाइयों को मरवा देने का प्रयत्न किया। सन् १७२० में हुसैन अली और सन् १७२२ में अब्दुल्ला मरवा दिए गए। मुहम्मदशाह का शासन बड़ा निर्बल था। मन्त्री आसफ़जाह ने हैदराबाद में, सआदतखाँ ने अवध में, अलीवर्दीखाँ ने बंगाल में

और रुहेलों ने रुहेलखण्ड में अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। इस प्रकार औरङ्गज़ेब की मृत्यु के २०-२५ वर्ष के भीतर ही विशाल मुग़ल साम्राज्य छिन्न भिन्न होने लग गया। मराठों की धाक दिल्ली तक जम चुकी थी और राजपूत भी अपने को पूरा स्वतन्त्र अनुभव करने लग पड़े थे। सन् १७३७ में बाजीराव पेशवा दिल्ली के पास आया। उसने कई ग्राम जला दिए। उसे रोकने के लिए बादशाह ने कोई यत्न न किया।

जब भारत अन्दर से ही अरक्षित हो गया, तो सीमा प्रदेशों की रक्षा कैसे हो सकती थी! अफ़ग़ानिस्तान में अराजकता छा गई। इसी अराजकता के कारण सन् १७३६ में नादिरशाह दिल्ली पर चढ़ आया।

नादिरशाह का आक्रमण (सन् १७३९)—नादिरशाह फ़ारस का बादशाह था। वह एक साधारण लड़का था, पर अपनी वीरता के कारण वह फ़ारस का बादशाह बन गया। भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति का उसे अच्छा ज्ञान था। उसने बहाना बनाया और दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। वह अत्यन्त वेग के साथ करनाल तक आ पहुँचा। करनाल पर मुहम्मदशाह की सेना ने उससे मुकाबला किया। बादशाही सेना हार गई और नादिरशाह दिल्ली की ओर चल पड़ा।

मुहम्मदशाह ने सन्धि की बात चलाई। पहले तो नादिरशाह मान गया पर पीछे अपने वचन से फिर गया और उस ने मुहम्मदशाह को कैद कर लिया। तब नादिरशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली में ईरानी सिपाहियों ने खूब लूट मार की, सहस्रों लोगों को क़त्ल कर दिया। नादिरशाह ने दिल्ली का

ऐश्वर्य नष्ट कर दिया। शाहजहाँ का बनवाया हुआ ताऊस सिंहासन और करोड़ों रुपया और हीरे जवाहिरात लेकर नादिरशाह ५७ दिन के पश्चात् अपने घर को लौटा।

नादिरशाह के आक्रमण का फल—सिक्ख, राजपूत और मराठों ने मुग़ल राज्य को जर्जरीभूत कर दिया था। नादिरशाह के आक्रमण ने उसे समूल हिला दिया। बिना धन कौन बादशाह रह सकता है। यह दशा मुहम्मद शाह की हुई। वह नाममात्र का बादशाह था। सन् १७४८ में मुहम्मदशाह मर गया।

अहमदशाह अब्दाली—दिल्ली लूटने के आठ वर्ष पश्चात् नादिरशाह कत्ल हो गया। उस के पश्चात् एक अफ़गान अहमदशाह अब्दाली ने अफ़ग़ानिस्तान पर अपना राज्य स्थापित किया। अब्दाली बड़ा वीर और विजय का इच्छुक था। मुहमदशाह का पुत्र अहमदशाह अब दिल्ली का बादशाह था, अब्दाली ने उससे पञ्जाब छीन लिया। सन् १७५७ में उसने दिल्ली को लूटा।

तेतीसवाँ अध्याय

मराठा साम्राज्य

शाहू (सन् १७०८–१७२०)—औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् शाहू बादशाही कैद से छूट गया। बहादुरशाह ने सोचा कि शाहू घर जा कर अपने राज्य के लिए झगड़ेगा और मराठा

सरदार परस्पर लड़ेंगे। वस्तुतः हुआ भी यही। शाहू चार पाँच वर्ष तक अपने अधिकार के लिए लड़ता रहा। उसका सब से बड़ा सहायक बालाजी विश्वनाथ था।

बालाजी विश्वनाथ—शाहू राजनीति से अनभिज्ञ केवल साधारण प्रकृति का पुरुष था। मुग़ल दरबार में कैदी के रूप में रहते हुए उसमें कोई गुण उत्पन्न नहीं हुआ। जब बालाजी विश्वनाथ ने शाहू को सहायता दी तब उससे प्रसन्न हो कर शाहू ने बालाजी को अपना पेशवा बना लिया। पेशवा प्रधान मन्त्री को कहते हैं। बालाजी सन् १७१४ में पेशवा बना। उसने मराठों के कई विद्रोह शान्त किए और मराठा राज्य को संगठित किया।

जब बालाजी विश्वनाथ पेशवा था तब दिल्ली में फर्रुखसियर और सैयद बन्धुओं का विरोध हो गया। बालाजी की सेना की सहायता से ही फर्रुखसियर मारा गया। नये बादशाह ने इस सहायता के बदले मराठों को सारे दक्षिण से चौथ आदि प्राप्त करने का अधिकार दे दिया। इस प्रकार दक्षिणी भारत पर मराठों का बड़ा अधिकार हो गया।

बाजीराव (सन् १७२०–१७४०) बाजीराव ने अपने पिता से राजनीति का अच्छा अभ्यास किया था। वह चतुर और साहसी भी था, इस लिए बालाजी की मृत्यु के पश्चात् शाहू ने जो स्वयं अशक्त था, बाजीराव को पेशवा बना कर उसके कुल के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित की। पेशवा का यह पद इस प्रकार एक ही कुल में स्थिर हो गया।

बाजीराव की योग्यता बढ़ती ही जा रही थी। शाहू और

भी व्यसनी हो गया और राज्य का सारा भार बाजीराव के ऊपर पड़ गया।

मराठों के चार राज्य—बाजीराव के काल में मराठों के चार राज्य स्थापित हो गए। गायकवाड़ का गुजरात में, होल्कर का इन्दौर में, सिन्धिया का ग्वालियर में और राघोजी भोंसले का मध्य भारत में। ये चारों राजा पेशवा के प्रति अत्यन्त आदर और सम्मान रखते थे। बाजीराव के काल में मराठों ने दिल्ली तक जाकर लूटमार करना आरम्भ कर दिया।

बालाजी बाजीराव (सन् १७४०—१७६१)—

बालाजी बाजीराव छोटी आयु में ही पेशवा बन गया। वह भी अपने पिता के समान चतुर और बुद्धिमान था। सन् १७४६ में शाहू मर गया। उसका राज्य ४८ वर्ष तक रहा। वह राजा था नाममात्र का। राज्य का वास्तविक संचालन पेशवा ही करता था। अब उसकी मृत्यु के पश्चात् पेशवा का अधिकार और भी बढ़ गया। पेशवा के परिश्रम से मराठा राज्य दूर दूर तक फैल गया। मराठा सरदार उत्तर तक आकर चौथ और सरदेशमुखी प्राप्त करते थे। इसके बदले वे कर देने वालों को न स्वयं लूटते थे, और न औरों से लूटा जाने देते थे।

सन १७५६ में अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली में लूट मार की। वह मथुरा तक पहुँचा और उसने वहाँ सहस्रों हिन्दू कत्ल किए। मराठे अपने आपको उत्तर भारत का अधिकारी समझते थे। अब्दाली के इस कर्म के बदले में सन् १७५८ में मराठा सरदार राघोबा ने पञ्जाब को अपने अधिकार में कर लिया। वह सिन्ध की सीमा तक पहुँच गया। मराठों के वैभव की यह पराकाष्ठा थी।

पानीपत का तीसरा युद्ध (सन् १७६१)—अहमद शाह सन् १७६० में ही पञ्जाब लौट आया। मार्ग में मराठों की जितनी चौकियाँ थीं वे उस ने नष्ट कर दीं। दिल्ली में से भी उस ने मराठा सरदारों को निकाल दिया।

जब यह समाचार पेशवा के पास पहुँचा तो उसने मराठा सेना एकत्र की। महाराष्ट्र में सदाशिवराव एक वीर सेनापति था। वही मराठा सेना का सेनापति और प्रधान सञ्चालक बना। वह अहमदशाह के समान रणचतुर नहीं था, परन्तु उस समय मराठों में उस से अधिक योग्य व्यक्ति भी रण के लिए न था। सदाशिव के साथ दक्षिण का प्रसिद्ध तोपची इब्राहीम गर्दे भी था। सदाशिव अपने सरदारों की सम्मति को नहीं मानता था। अब्दाली ने जाट और राजपूतों से सहायता ली। तीन मास तक अहमदशाह और सदाशिव की सेना पानीपत के क्षेत्र में एक दूसरे के सामने पड़ी रही। जो भूल राणा साँगा जैसे रणनिपुण ने की थी, वही भूल सदाशिव ने की।

तीन मास के पश्चात् मराठों की अन्न आदि सामग्री समाप्त होने लगी। अब्दाली रुहेलों की सहायता से अन्न का पूरा प्रबन्ध कर लेता था। अपनी परिस्थिति को देख कर १४ जनवरी सन् १७६१ को मराठा सेना ने अब्दाली पर आक्रमण किया। दोपहर तक युद्ध भीषण रहा। तीसरे पहर कई मराठा सरदार मारे गए। मराठों का बड़ा संहार हुआ और उन्हें युद्ध में हारना पड़ा।

यह समाचार जब पेशवा के पास पहुँचा तो उसके हृदय पर बड़ा आघात हुआ। वह कुछ पागल सा हो गया और २३ जून १७६१ को मर गया।

पानीपत के युद्ध से मराठा शक्ति क्षीण हो गई। मुग़ल साम्राज्य पहले ही नष्ट भ्रष्ट हो चुका था। भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों में अनेक छोटे छोटे राजा उठ खड़े हुए। उन की शक्ति थोड़ी ही थी। वे एक दूसरे से लड़ते भी रहते थे। उन में ऐक्य का होना असम्भव था। ऐसे काल में योरुप की शक्तियों ने भारत में अपने पाँव जमाने आरम्भ किए।

❀

❀ ❀